उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—५ अक्टूबर—१९८६ अंक—१०

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जब तक हवा न बहती हो तभी तक लोग गरमी दूर करने के लिए पंखा झलते हैं, एक बार हवा बहने लगी कि पंखा नीचे रख देते हैं। साधना में भी जब तक ईश्वरीय सहायता न मिले तब तक साधक को स्वयं मेहनत करनी पड़ती है, ईश्वर की कृपा हो जाने पर फिर मेहनत नहीं करनी पड़ती।

(२)

"जीव पर भगवान्, गुरु तथा भक्तजनों की दया होने के बावजूद यदि स्वयं की दया न हो तो उसका विनाश ही होता है।" अर्थात् इन तीनों की कृपा होते हुए भी यदि मनुष्य के मन में मुक्ति की स्पृहा न हो, व्याकुलता न हो, तो सदुपदेश, साधुसंग आदि सब विफल ही होते हैं।

(३)

स्त्री यदि अपने पति के प्रति एकनिष्ठ हो तो वह सती परलोक में भी अपने पति से जा मिलती है। इसी प्रकार अपने इष्ट देवता पर एकनिष्ठ भक्ति हो तो ईश्वर दर्शन होता है।

(४)

जो हीनबुद्धि होते हैं वे ही रोग अच्छा करना, मुकदमा जिता देना, पानी पर चलना आदि सिद्धियां प्राप्त करना चाहते हैं। जो शुद्ध भक्त होते हैं वे ईश्वर के पादपद्मों को छोड़ अन्य कुछ भी नहीं चाहते।

विनय

—गोस्वामी तुलसीदास

यौंहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुःख रोयो ॥१॥

सीतल मधुर बिमल सहज सुख निकटहि रहत दूरि जन खोयो
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥२॥

करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो ॥३॥

तुलसिदास प्रभु ! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहि गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो ॥४॥

भावार्थ—इस मूर्ख मन ने मुझको खूब ही छकाया। हे करुणामय ! सुनिए, इसी के कारण मैं बारम्बार जगत में जनम-जनम कर दुःख से रोता फिरा ॥१

शीतल और अमृत रूप सहज सुख (ब्रह्मानन्द) जो अत्यन्त निकट ही रहता है. (आत्मा का स्वरूप ही सत्, चित्, आनन्दघन है) मैंने इस मन के फेर में पड़कर उसे यों भुला दिया, मानो वह बहुत ही दूर हो। मोहवश अनेक प्रकार से परिश्रम कर मुझ मूर्ख ने व्यर्थ ही पानी को बिलोया (विषय रूपी जल को मथकर उससे परमानन्दरूपी घी निकालना चाहा ॥२

यद्यपि मन में यह जानता था कि कर्म कीचड़ है, (उसमें पड़ते ही सब ओर से मलिनता छा जायगी) फिर भी चित्त को उसी में सानकर (प्यास बुझाने के लिए) मैं कुटिल, मल से ही मल को धोया चाहता हूँ। प्यास लग रही है, पर मैं ऐसा दुष्ट हूँ कि श्रीगंगाजी को छोड़कर बार-बार व्याकुल हो आकाश निचोड़ता फिरता हूँ (सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए दुःख रूप विषयों में भटकता हूँ ॥३

हे नाथ ! मैंने अपना एक भी दोष आप से नहीं छिपाया है, अतः इस तुलसीदास पर कृपा कीजिए। मुझे बिछौना बिछाते-बिछाते ही सारी रात बीत गयी, पर हे नाथ ! कभी नींद भर नहीं सोया। सुख-प्राप्ति के उपाय करते-करते ही जीवन बीत गया, आपको प्राप्त कर पूर्णकाम हो बोधरूप सुख की नींद में कभी नहीं सो पाया। अब तो कृपा कीजिए) ॥४

श्रीरामकृष्ण और विश्वशान्ति

—प्रो० ए. एल. बाशम

[गत १९८५ के २४ से ३० दिसम्बर तक बेलुड़ मठ में अनुष्ठित अखिल भारतीय युवा सम्मेलन के अवसर पर, कैनबेरा में स्थित ऑस्ट्रेलियन नेशनल इन्सटिट्यूट के भारत तत्त्व के भूतपूर्व अध्यापक एवं कलकत्ता के "एशियाटिक सोसाईटी" के विवेकानन्द अध्यापक, ए, एल. बाशम के अंग्रेजी में प्रदत्त भाषण का अध्यापक विमलेश्वर डे द्वारा हिन्दी रूपान्तरण। अति दुःख की बात है कि अध्यापक बाशम का निधन २७ जनवरी १९८६ को कलकत्ता में हो गया—सं०]

देवप्रतिम श्रीरामकृष्ण जब कलकत्ता में सुपरिचित थे उस समय कुछ ही व्यक्ति विश्वशान्ति की समस्या पर चिन्तित थे। वस्तुतः उस समय कोई युद्ध बड़े पैमाने पर नहीं हुआ था। परिणामस्वरूप विश्व का परिवेश उस समय अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण रहा था। श्रीरामकृष्ण की शिक्षा में प्रत्यक्ष रूप से विश्व में शान्ति की प्रतिष्ठा के संबंध में कोई बात नहीं थी। प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी की शान्ति की रक्षा के बारे में बात नहीं रहने पर भी उनकी शिक्षा में थी स्वार्थत्याग एवं आत्मसमर्पण की प्रेरणा—जो मानव समाज में शान्ति, सौहार्द्र और पारस्परिक सम्प्रीति के भावों को परिपुष्ट करती है। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण ने अपने को शान्ति के संदेशवाहक के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया था, यद्यपि उनकी शिक्षा में ही उनकी यह भूमिका अन्तर्भुक्त थी। उनकी शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था पारस्परिक सम्प्रीति का प्रसार करना, यथासम्भव व्यक्ति के द्वारा संकीर्णताबोध के ऊपर उठकर एक स्वस्थ जीवनप्रणाली का निर्माण एवं विभिन्न धर्मों के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा व्यक्त करना। वर्त्तमान काल की परिस्थिति में विशेष परिवर्त्तन हुआ है। सारे विश्व में पारमाणविक युद्ध का संत्रास फैला हुआ है। इसके परिणामस्वरूप सर्वत्र मनुष्य आज अपने भविष्य के बारे में संत्रस्त एवं भयभीत है। सम्भवतः आज मनुष्य पहले से बहुत अधिक स्वार्थपूर्ण हो गया है एवं उसका धर्म-बोध अभी पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया है। संसार के विभिन्न भागों में आज मुसलमान एवं यहूदी, कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट एवं दूसरे सम्प्रदायों के बीच पारस्परिक कटुता हिंसा का रूप ले रही है। सिर्फ इतना ही नहीं, विश्व के कई देशों ने धर्म को त्याग कर जीवनयापन करने की बात की सगर्व घोषणा की है। फिर बहुतों ने धर्म का प्राचीनकाल के अर्थहीन प्रतीक के रूप में उल्लेख किया है।

ऐसी परिस्थिति में आज विश्व में श्रीरामकृष्ण का प्रयोजन पहले से अधिक है। उन लोगों के लिए प्रयोजन है जो उनकी वाणी, उनकी शिक्षा को पृथ्वी के विभिन्न स्तरों में पहुँचा देंगे। उनकी वाणी और शिक्षा को बहुत लोग अस्वाभाविक भी सोच सकते हैं। किन्तु इसके सिवा पृथ्वी में दूसरा कोई मार्ग नहीं है जो मानव समाज को न्याय, नीति एवं पवित्रता के नये मार्ग पर परिचालित कर सकता है। एकमात्र श्रीरामकृष्ण की वाणी एवं शिक्षा ही विनाश के क्रूर हाथों से आज पृथ्वी की रक्षा कर सकती है।

आत्मा का प्रवेश द्वार-हृदय

स्वामी यतीश्वरानन्द
अनु०-स्वामी ब्रह्मेशानन्द

समुद्रतल में मोती हैं। कुछ सीपियों में मोती होते हैं, सबमें नहीं। स्वाति नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद लेकर सागर की गहराई में पैठकर मोती बनाने वाले घोंघे की तरह होओ! इस गहराई में पैठने का क्या अर्थ है? इसका अर्थ देह, इन्द्रियों एवं अहंकार के परे, अपने मन की गहराई में जाना है। अब, अन्य साधन मार्गों में, विशेषकर तंत्रों में हृदय-पद्म में ध्यान करने को कहा जाता है। यहाँ सबसे आसानी से पहुँचा जा सकता है। यह देह एक अद्भुत वस्तु है। चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक सभी वस्तुएँ इसमें विद्यमान हैं। तंत्र में एक उत्तम ध्यान बताया गया है। निम्नतम चक्र से प्रारम्भ करो और नाभि, हृदय, कंठ, भ्रूमध्य आदि से होते हुए इसके भी ऊपर पहुँचो। तब हम चैतन्य के केन्द्र, सर्वोच्च चक्र, सहस्रार में पहुँचते हैं। यहाँ परमात्मा का, महज्ज्योति का ध्यान करो। अपने को स्वयं की अन्तरात्मा में विलीन कर तुम्हें इस सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करना है। इस अवस्था में परमात्मा और जीवात्मा का मिलन होता है।

यह उस प्रक्रिया की विपरीत क्रिया है, जिसके द्वारा जीवात्मा उस उच्च दिव्यता से अधःपतित हो जड़ पदार्थ से संयुक्त हो गया था। वह केन्द्रीय आध्यात्मिक मार्ग, सुषुम्ना के माध्यम से नीचे आकर पथभ्रष्ट हो गया था। केन्द्रीय मार्ग का प्रवेश द्वार बन्द रहता है। तथा चेतना के सभी क्रियाकलाप पार्श्वस्थ मार्ग इडा और पिंगला के द्वारा होते रहते हैं। योगी का पथ सुषुम्ना के बीच होकर है। पवित्रता और इन्द्रिय संयम के बिना कोई इसमें प्रवेश नहीं कर सकता। अतः सामान्य व्यक्ति क्या करें? यदि विद्युत चालित 'लिफ्ट' बन्द हो तो साधारण सीढ़ी का उपयोग करना होगा। अगर तुम इस विद्युत चालित 'लिफ्ट', सुषुम्ना मार्ग को खोज सको तो तुम्हारी प्रगति अत्यन्त तेजी से होगी। तब तक तुम्हें श्रमसाध्य पथ का ही अनुसरण करना होगा। सीढ़ी से चढ़ते हुए हृदय के पड़ाव तक पहुँचो और वहाँ विद्युत् लिफ्ट को प्राप्त करो। पवित्रता तथा सत्य, अहिंसा आदि नैतिक आदर्श इसके उपाय हैं। इन सभी सद्गुणों का अभ्यास करो। तुम्हें एक अन्तर्दृष्टि प्राप्त होगी जिसकी सहायता से तुम इस विद्युत लिफ्ट को खोज सकोगे। हम जितने ऊपर जाएँगे उतनी ही अधिक व्यापकता होगी। निम्न केन्द्रों में केवल अंधकार ही है। निम्न चक्रों में केन्द्रित मानव जीवन एवं पशु के जीवन में कोई अन्तर नहीं होता। उच्च से उच्चतर भूमि में आरोहण करो तब तुम्हें अधिकाधिक प्रकाश मिलेगा।

प्रकाश भीतर है, उसमें संदेह न करो। इस हृदय केन्द्र का ध्यान करो—भौतिक हृदय का नहीं, लेकिन उस स्थान का जहाँ तुम अपनी चेतना का अनुभव करते हो। कल्पना करो कि यह चैतन्य तुम्हारे समग्र देह और मन को व्याप्त किये हुए है। यह क्षुद्र चैतन्य, अनन्त ज्योति का अंश है। इस क्षुद्र चैतन्य की सहायता से हमें उस अनन्त चैतन्य को खोजना है। उर्ध्वगामी होकर उच्चतर स्तरों का लाभ करने वाला जीवन के महान सत्यों को प्रत्यक्ष करने में समर्थ होता है। थोड़ी मात्रा में वह सामर्थ्य हममें अभी भी विद्यमान है, तथा हम दैहिक तथा मानसिक स्तर पर वस्तुओं को आसानी से देख सकते हैं। आवश्यकता है उच्चतर जीवन के सत्यों को जान पाने की क्षमता हासिल करने की। इसकी तुलना तीसरे नेत्र अथवा दिव्य दृष्टि के खुलने से की

जाती है। इस पथ को छुरे की धार, "क्षुरस्य धारा" की तरह तीक्ष्ण कहा गया है। इस यात्रा को प्रारम्भ करने से पूर्व मन एवं इन्द्रियों के संयम एवं पवित्रता में प्रतिष्ठित होना आवश्यक है अन्यथा साधक किसी भी क्षण दुर्घटना का शिकार हो सकता है।

उच्च स्तरों पर आरोहन करने पर हमें अनुभव होता है कि हम देह मन नहीं है, हम जन्म-मृत्यु द्वारा प्रभावित नहीं हो सकते। हम कर्त्ता नहीं हैं, अतः हमें बन्धन नहीं हो सकता। यह ज्ञान आसानी से नहीं होता तब तक सदाचार पूर्ण जीवन यापन एवं साधना करनी होती है। यदि कर्त्ता होना ही पड़े तो शुभ कर्म करो। कर्त्ता को अनिवार्यतः भोक्ता होना होगा। अतः यदि भोक्ता होना पड़े तो शुभ का भोग करो। चेतना को आध्यात्मिक दिशा प्रदान करो। अतः श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "अहंकार त्यागा नहीं जा सकता, तो उसे भगवान के बालक, शिष्य, अथवा सेवक के अहंकार के रूप में रहने दो।" ऊपर उठने का यह उपाय है।

वह चैतन्य ज्योति ही हमारा लक्ष्य है।" जो द्रष्टा है वह आत्मा" समस्त दुःख निवृत्ति एवं शान्ति के लिए इस सत्य का मनन करो। इसके अतिरिक्त दुःखों से छुटकारा पाने का और कोई उपाय नहीं है। उपनिषदों की घोषणा है :

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।

अर्थात् 'जब मानव आकाश को चमड़े की तरह समेटने में समर्थ होंगे तभी परमात्मा को जाने बिना दुःख का अन्त हो सकेगा।'

क्या यह कभी सम्भव है ? समग्र दृश्य जगत माया-मेघ का अंश है। लेकिन मेघ भी स्वयं सूर्य के प्रकाश से आलोकित है तथा सूर्य वस्तुतः कभी भी मेघ से आच्छादित नहीं होता। मेघ के ऊपर उठो जहाँ सूर्य सदा प्रकाशमान है। गहरे पठो। जितना अन्दर प्रवेश करोगे, तुम उतना ही उच्च आरोहन करोगे तथा तुम्हारा उतना ही विस्तार होगा। ध्यान के समय कभी तुम बहुत उच्च स्तर पर पहुँच जाते हो, और तुम्हें लगता है मानो तुम एक सन्त हो। यह तुम कितने ऊपर उठ सकते हो, इसका कोई अन्त है। लेकिन आकस्मिक पतन भी होते हैं। तथापि भगवत् कृपा से यदि तुम लक्ष्य पर दृष्टि निबद्ध रखो और गुरु के निर्देशों का सावधानी से पालन करो तो तुम सफल होओगे। आत्मा को ढकने वाले स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीररूपी जड़ आवरणों का भेदन करो। तब प्रकाश होगा। ये मेघों की एक परत पर दूसरी परत के समान हैं। इनको भेदकर सूर्य को देखो जो कभी भी मेघाच्छन्न नहीं होता।

अब चूँकि हममें से अधिकांश आत्म-विश्लेषण के सीधे मार्ग से आत्मज्योति को खोजने में असमर्थ हैं, अतः अपने सम्मुख आदर्श को एक दैवी विग्रह के रूप में प्रतिष्ठित करो। उनका ध्यान करने से मन पवित्र होता है। एक नयी चेतना का उदय होता है। हम सदा भौतिक संवेदनाओं के स्तर पर जीते हैं। जब हम गहराई में प्रवेश करते हैं तब दैहिक के भीतर मानसिक और तदनन्तर कारण स्तरों पर पहुँचते हैं। प्रगति करने पर तुम्हें अनुभव होगा कि दिव्य महापुरुष में जो ज्योति है, वह संभवतः कम मात्रा में तुममें भी है। यह स्पष्ट है कि प्रकाश को अपने पूर्ण वैभव में अनुभव करने के लिए हमें इससे बहुत अधिक दूरी तय करनी होगी। लेकिन हम देखते हैं कि हम ऐसा नहीं कर पाते, हम सो जाते हैं। प्रयास को त्रिगुणित करना होगा। हम स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से कारण तक पहुँचते हैं। कारण से आत्मा को पहुँचा जाता है। सूक्ष्म, स्थूल से अधिक व्यापक है तथा उसे अन्दर-बाहर व्याप्त किये हुए है। आत्मा सर्वव्यापी अनन्त तथा अखंड है। अनन्त में मनोमय जगत् प्रकट होता है, तथा मनोमय जगत में स्थूल जगत प्रकट होता है। तुम अरण्य में राह भटक गये हो यदि तुम जिस मार्ग से गये हो उसी से सावधानीपूर्वक लौटो तो अन्ततः तुम अरण्य से निकल आओगे। इस तरह शुद्ध आत्मा माया के जाल में फंस गयी है माया के परिणामों के साथ तादात्म्य स्थापित कर

अन्तर्ज्योति धूमिल हो जाती है। वह पहले मन, उसके बाद इन्द्रियों एवं देह के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है। और अधिक बहिर्मुखी होने पर तुम इस अज्ञानरूपी अरण्य से बाहर नहीं निकल पाओगे। अतः तुम्हें प्रत्यागमन कर अपने भीतर खोजना होगा। मन को अधिकतर शुद्ध एवं सूक्ष्म होना होगा। यह कैसे करें?

मन सदा स्थूल रूपों का चिन्तन करता है। दिव्य महापुरुष के ज्योतिर्मय रूप का चिन्तन करने पर मन की क्रिया को नयी दिशा मिलेगी। हम अपने क्षुद्र अहं में ही व्यस्त रहते हैं, अब एक कुछ उच्चतर एवं श्रेष्ठतर वस्तु का चिन्तन करने लगते हैं। दिव्य महापुरुष का आनन्दमय रूप मन पर आधिपत्य स्थापित कर लेता है। जो मन सर्वदा जड़ पदार्थों का चिन्तन करते-करते पाषाणवत् जड़ हो गया था, अब दिव्य रूप के आनन्द एवं ज्योति के द्वारा परिव्याप्त हो जाता है। वह अपने जड़ स्वभाव को त्यागने लगता है। आनन्दमय रूप से और गहरे जाओ, उनके सद्गुणों का चिन्तन करो। यहीं पर न रुको। चैतन्य सबसे महत्वपूर्ण है। मेरी चेतना एक क्षीण प्रतिबिम्ब होते हुए भी, उनकी चेतना जो अनन्त चैतन्य के साथ एक है, का अंश है। तुम जितना उच्चारोहण करोगे, उतने ही सूक्ष्म स्तर पर पहुंचोगे। वह ऊँचा भी है, और गहरा भी। शुद्धतर स्तरों पर पहुंचने पर तुम्हारी चेतना व्यापक होती है। अतः हम स्थूल स्तरों से, स्थूल प्रतीकों की, भगवन्नाम की सहायता से प्रारम्भ करते हैं। सजग होकर, समझ बूझकर, मंत्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए भगवन्नाम का जप करो। तब तुम आध्यात्मिक स्तर की देहली पर पहुंचोगे। तब तुम बाह्य जगत से अलग हो मानसिक धरातल से उठकर गहरे ध्यान के स्तर पर पहुंच जाओगे। बाह्य गतिविधि अप्रिय लगने लगेगी। मन बहुत शान्त हो सूक्ष्म स्तर पर पहुंच जाएगा। ध्यान निरविच्छिन्न तैल धारावत् होना चाहिए। यहाँ (इस स्तर पर) बाह्य शब्द अथवा रूप के बिना ही मन एकाग्र हो जाता है। एक नवीन आन्तरिक चेतना का उदय होता है। भजन एवं कीर्तन मन को उठाते हैं, पर यह स्थायी अवस्था नहीं होती। स्थायी परिणाम के लिए तुम्हें आध्यात्मिक पथ के इंच-इंच पर विजय प्राप्त करनी होगी, और यह दीर्घकाल तक व्यवधानरहित ध्यान के अभ्यास से ही सम्भव है। पद्धति को जान लो। फिर तुम आनन्द एवं प्रेमपूर्वक परमात्मा का चिन्तन कर सकोगे। तुम मन की क्रिया को रोक नहीं सकते। अतः उसे चिन्तन के लिए नये विषय प्रदान करो—परमात्मा, जगन्माता, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द (मन का आध्यात्मीकरण करो) स्थूल से सूक्ष्म तथा आत्मा की ओर बढ़ने का यह मार्ग है।

तुम भीतर प्रवेश करते हो। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ कहीं देह के अन्दर नहीं, बल्कि चेतना के मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर जाना है। ऐसा करने पर तुम भौतिक जगत से अधिक व्यापक जगत में प्रवेश करते हो। तुम्हारा क्षुद्र मन व्यापक सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। हृदय आध्यात्मिक स्तर का प्रवेश द्वार है। विभिन्न प्रकार के हृदय हैं—भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। ये एक केन्द्रीय वृत्तों की तरह चेतना के विभिन्न स्तर हैं। हमारे क्षुद्र हृदय को सर्वव्यापी हृदय के साथ सह स्पन्दित होना चाहिए। जानो कि आत्मा समस्त शरीर में व्याप्त है, लेकिन हम घनीभूत चेतना का अनुभव अन्य केन्द्रों से अधिक, हृदय में करते हैं। मन को अन्तर्ज्योति में निविष्ठ करो। कुछ समय तक इसका अभ्यास करो। तब क्रमशः तुम्हें "जीवन्त चैतन्य" का अनुभव होगा। जिस मात्रा में मन पवित्र होगा, साधना उसी मात्रा में सफल होगी। स्वामी ब्रह्मानन्द जी हमें कहा करते थे, "साधना करते-करते तुम जानने लगोगे कि हृदय क्या है, गहरे कैसे जाना, तथा क्या खोजना चाहिए।"

महात्मा गाँधी : जीवन और काया के स्थायी तत्व

—स्वामी रंगनाथानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ हैदराबाद

दुनिया के महान् नेताओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी में वे नेता आते हैं जिनका अपने समकालीन लोगों के जीवन और विचारों पर न्यूनाधिक प्रभाव होता है, किन्तु उनका यह प्रभाव उनकी मृत्यु के बाद शीघ्रता से लुप्त होने लगता है। दूसरी श्रेणी में वे चुने हुए थोड़े से नेता आते हैं जो इस संसार से उठ जाने के बाद भी अपने जीवन और संदेश से मानवता को दीर्घकाल तक प्रभावित करते रहते हैं। दूसरी श्रेणी के इन नेताओं में ऐसी महानता होती है जो काल के प्रभाव का अतिक्रमण कर जाती है। काल संसार की प्रत्येक वस्तुओं को अपने निर्मम प्रवाह से धो बहाता है, किन्तु वह भी इन महापुरुषों के यशः शरीर का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यह महानता अपने नेता के जीवन और संदेश में मिलने वाली कुछ ऐसी स्थायी और गम्भीर महत्त्व की वस्तु को प्रकट करती है, जो उसके अस्थायी और क्षणभंगुर विचारों एवं मूल्यों से परे होती है। गाँधीजी इसी दूसरी श्रेणी के नेता थे।

गाँधीजी ने अध्यात्म-साधना को अपने जीवन का सबसे प्रमुख आग्रह और केन्द्रीय ध्येय बताते हुए लिखा है :—

"मैं अपने जीवन के इन तीस वर्षों में जिस लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश करता रहा हूँ और जो मेरे जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा रही है, वह आत्म-साक्षात्कार है। मैं परमात्मा का साक्षात् दर्शन करना चाहता हूँ। मेरा उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना रहा है। मैं इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीवित हूँ और मेरा सारा कार्य इसी ओर अभिमुख है। मैं बोलकर और लिखकर जो कुछ भी करना या कहना चाहता हूँ और राजनीतिक क्षेत्र में मैं जो कुछ भी प्रयास करता हूँ वह सब का सब इसी एक उद्देश्य की ओर निर्दिष्ट होता है।"

उनकी मृत्यु के बीस वर्ष बाद और उनकी प्रथम जन्मशती के अवसर पर उनके जीवन और कार्यों का इस दृष्टि से अध्ययन होना चाहिए कि उनमें क्या स्थायी तत्त्व है और उससे हम क्या लाभ उठा सकते हैं। यही हमारा उचित कर्तव्य होगा। बीस वर्षों की इस अल्प अवधि में उनकी सामाजिक एवं आर्थिक योजनाओं तथा कार्यक्रमों की अनेक बातें अपना महत्त्व खो चुकी हैं। गाँधी जी ने स्वयं अपने भाषणों में इसकी संभावना व्यक्त कर दी है। सत्य के दृढ़प्रतिज्ञ प्रयोक्ता होने के कारण वे यह बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे कि उनके बाद उनके नाम पर गाँधीवाद का कोई सम्प्रदाय चल पड़े। सत्य का अनुसंधान भौतिक विज्ञान, सामाजिक जीवन अथवा आध्यात्मिक जीवन किसी भी क्षेत्र में जड़ीभूत स्थिर सिद्धान्तों के प्रति आसक्ति होने से नहीं चलाया जा सकता। इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचारों की मूर्खतापूर्ण सतत मुसङ्गति छोटे दिमाग को ही उपज होती है।

गाँधीजी ने हरिजन में (३०-९-१९३९, पृष्ठ ३८२) इस विषय पर लिखा है कि :—

"मेरा लक्ष्य किसी विशेष प्रश्न पर पहले दिये हुए किन्हीं वक्तव्यों के साथ हमेशा संगतिपूर्ण विचार व्यक्त करते रहना नहीं है। इसके विपरीत मेरा लक्ष्य समय विशेष पर सत्य अपने को जिस रूप में मेरे सामने प्रस्तुत करता है उसके साथ संगति बैठाना है। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं एक सत्य से दूसरे सत्य की ओर बढ़ते हुए बराबर विकसित होता रहा हूँ।"

सत्य के प्रति अपने इस प्रेम के कारण गांधीजी ने किसी भी सम्प्रदाय या दल से आबद्ध होने से इनकार कर दिया। यंग इण्डिया में (२५-८-१९२१ पृष्ठ २६७) गांधीजी ने लिखा है कि :

"शिमला से पत्राचार करनेवाले एक व्यक्ति ने मुझसे बार-बार यही प्रश्न किया है कि क्या मैं किसी तरह का सम्प्रदाय बनना चाहता हूँ अथवा किसी प्रकार की दिव्यता का दावा करता हूँ? मैंने उसे एक निजी पत्र में जवाब दे दिया है। किन्तु पत्रलेखक चाहते हैं कि मैं आनेवाली पीढ़ियों के लिए इसकी सार्वजनिक घोषणा कर दूँ। मैंने अत्यन्त स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में यह व्यक्त कर दिया है कि दिव्यता के प्रति मेरा किसी तरह का कोई दावा नहीं है। मैं भारत और मानव-जाति का एक नम्र सेवक होने का ही दावा करता हूँ और उसी की सेवा करते हुए मर जाना चाहता हूँ। मैं किसी तरह का सम्प्रदाय बनाना नहीं चाहता। वस्तुतः मुझे अपने किसी सम्प्रदाय या अनुयायी वर्ग से कोई संतोष हो ही नहीं सकता क्योंकि मैं किन्हीं नये सत्यों का प्रतिपादन नहीं कर रहा हूँ। मैं तो केवल सत्य को जिस रूप में जान पाता हूँ उसी रूप में उसे प्रतिपादित करना चाहता हूँ और मेरा यह प्रयास रहता है कि मैं उसी रूप में उसका अनुसरण कर सकूँ। मेरा यह दावा अवश्य है कि मैंने अनेक प्राचीन सत्यों पर नया प्रकाश डाला है।"

गांधीजी के संदेश की शाश्वत आत्मा सत्य और अहिंसा में निहित है। उन्होंने स्वयं इस तथ्य पर जाने कितनी बार प्रकाश डाला है। इस दिशा में गांधीजी की अद्वितीय देन यह रही है कि उन्होंने इन महत्त्वपूर्ण गुणों का प्रयोग सामूहिक सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन और कार्यों के वृहत्तर क्षेत्रों में किया है। उन्होंने जिस आग्रह के साथ आध्यात्मिक अनुसंधान किया था उसी आग्रह से उन्होंने सर्वत्र मानवीय आत्मा के स्वातंत्र्य और गरिमा की रक्षा के लिए उसे संघर्ष में भी रूपान्तरित कर दिया था। उन्होंने राजनीति में भी इन मूल्यों की प्रतिष्ठा करके उसे मानवीय विकास के महान् उद्देश्य की सिद्धि का एकमात्र मार्ग बना दिया। उन्होंने मानव-पशु को देवकल्प मानव के रूप में विकसित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने मानव जाति को भाग्य के चौराहे पर खड़ा देखा था। विगत कुछ शताब्दियों में मनुष्य की प्रज्ञा नितान्त अनुशासित एवं तीक्ष्ण हो उठी है और मनुष्य शक्ति एवं सत्ता के विराट् साधनों का स्वामी बन चुका है, किन्तु आध्यात्मिक दिशानिर्देश के अभाव में इस समस्त प्रगति ने मनुष्य की पाशविक बुभुक्षाओं को ही तीव्र बनाया है और उसके आन्तरिक संघर्षों और तनावों को गहरा कर दिया है जिसके फलस्वरूप संसार में घृणा, हिंसा और युद्ध का वातावरण बनता जा रहा है। गांधी जी ने अपने अनेक समसामयिक विचारकों के समान ही इस बात की आवश्यकता महसूस की थी कि मनुष्य ने अपने भौतिक और बौद्धिक जीवन में जो विकास किया है उसी के अनुरूप उसे अपने आध्यात्मिक जीवन में भी विकास करना चाहिये। उसका भौतिक और बौद्धिक जीवन उसके लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष और वास्तविक होता है, किन्तु आध्यात्मिक जीवन उतना वास्तविक और प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु, बीसवीं शताब्दी के जीव-विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के वास्तविक विकास का क्षेत्र विशेष रूप से उसका आध्यात्मिक जीवन ही है। जब मनुष्य की जीवनशक्ति को आध्यात्मिक दिशा मिलती है तभी वह सच्चा मानव बन पाता है और तभी उसका जीवन सच्चा जीवन होता है। इसमें विफल होने पर उसकी जीवनशक्ति जड़ हो जाती है और उसकी अन्तश्चेतना मूर्छित होने लगती है। वैसी स्थिति में उसका जीवन मिथ्या हो जाता है और उसे अपूरणीय क्षति पहुँचती है। केन उपनिषद् (२,५) में इसकी उद्घोषणा इन शब्दों में की गयी है :—

इह चेदवेदिनथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदिन्महती विनष्टिः

"जब मनुष्य यहाँ (इस जीवन में) अनुभव कर लेता है (अपने आध्यात्मिक आयाम का) तभी वह सच्चे जीवन का अनुभव कर पाता है; यदि वह यहाँ इसका अनुभव करने में विफल हो जाता है तो उसको महती क्षति होती है।"

गाँधीजी केवल वाचनिक सत्य के ही आग्रही नहीं थे, वे उस सत्य को खोज रहे थे जो समग्र जीवन और अनुभव में केन्द्रस्थ रूप से अन्तर्निहित रहता है। जब हम क्रमशः उनके सत्यसंधान की गहराइयों में उतरने लगते हैं तो हमें उनके सामान्य जैव स्वभाव पर प्रतिष्ठित आध्यात्मिक स्वभाव के अन्तरंग सत्य का दर्शन होता है और हम प्राणिमात्र के साथ उनके तादात्म्य और आध्यात्मिक ऐक्य का अनुभव करने लगते हैं। इस खोज का एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि हम प्राणिमात्र के प्रति अपना प्रेम क्रमशः बढ़ाते जायें; क्योंकि आध्यात्मिक इकाई और बन्धुत्व की चेतना से ही प्रेम का उद्भव होता है। इसीलिए गाँधीजी ने सत्य के प्रति अपने आग्रह को प्रेम के प्रति समान आग्रह के साथ संयुक्त कर दिया और इसे अहिंसा की संज्ञा प्रदान की। गाँधीजी ने अपने चारों ओर मानसिक और भौतिक हिंसा का बाहुल्य देखा, इसीलिए उन्होंने अहिंसा पर इतना बल दिया। फिर भी उन्हें इस बात का बराबर संदेह बना रहा कि कहीं लोग उनकी अहिंसा को भी निषेधक अर्थों में ही न ग्रहण करने लगें, जैसा कि सामान्यतः होता है, इसीलिए उन्होंने बार-बार यह स्पष्ट किया है कि अहिंसा प्रेम की वास्तविक और सकारात्मक शक्ति है। हम प्रेम के सकारात्मक सिद्धान्त से ही किसी प्रकार की सक्रिय सामाजिक नैतिकता का ग्रहण और पोषण कर सकते हैं। यह अहिंसा के निषेधात्मक सिद्धान्त से कभी संभव नहीं है। गाँधीजी मुख्यतः गतिशील सामाजिक नैतिकता के ही उपदेष्टा और व्यवहर्ता हैं। उनकी नैतिकता का उद्देश्य आध्यात्मिक दृष्टि से संवेदनशील नर-नारियों में अन्तर्निहित प्रेम के स्रोत को मुक्त कर देना है जिससे पूरे समाज की नैतिकता उन्नत और सुदृढ़ हो सके। केवल ऐसा ही समाज अपने सदस्यों को सर्वाङ्गीण विकास की प्रेरणा दे सकता है।

गाँधीजी के राजसत्तासंबंधी विचार मानव स्वभाव संबंधी उनके उपर्युक्त दर्शन पर ही आधारित हैं। स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक राजसत्ता के संबंध में अपनी परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए गाँधीजी ने कहा था :

"मैं यह दिखला देने की आशा करता हूँ कि सच्चा स्वराज्य कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं आयेगा, बल्कि सत्ता के दुरुपयोग के प्रतिरोध के लिए सबके द्वारा सामर्थ्य प्राप्त कर लेने से आयेगा। दूसरे शब्दों में जनता को सत्ता के नियमन और नियंत्रण के अपने सामर्थ्य के प्रति सजग बनाने की शिक्षा द्वारा ही स्वराज्य की उपलब्धि हो सकती है।"[2]

राजसत्ता नागरिक की परिपूर्णता की अभिलाषा की पूर्त्ति की साधिका है। उसका संवर्धन और विकास ही राजसत्ता के अस्तित्व का औचित्य है। यह संवर्धन और विकास मुख्यतः मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक होता है किन्तु, इसके लिए आधार रूप में आर्थिक सुरक्षा और राजनीतिक स्थिरता अपेक्षित होती है जिसे विवेकपूर्ण सहकारी श्रम और अन्योन्याश्रय की नैतिक चेतना से उद्भूत सेवा-भावना से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए समाज में सत्य और अहिंसा के अविभाज्य मूल्यों का व्यापक प्रसार अपेक्षित है। जब तक राष्ट्र के नागरिकों का उन्नयन नैतिक स्तर तक नहीं हो जाता, लोकतन्त्र का अस्तित्व संदिग्ध ही बना रहेगा। इसके संबंध में गाँधीजी कहते हैं :

"लोकतन्त्र के सम्बन्ध में मेरी यह धारणा है कि इसके अन्तर्गत दुर्बलतम लोगों को प्रबलतम लोगों के समान अधिकार मिलने चाहिये। अहिंसा के बिना यह कभी सम्भव नहीं हो सकता।"[3]

उन्नीसवीं शती के जीवविज्ञान में विकास प्रक्रिया का जैसा निरूपण किया गया है उसमें प्रेम के नैतिक मूल्य और मानव की मानव के प्रति शुभभावना को कोई स्थान नहीं मिला था। जैसा कि टामस हक्सले ने अपने "एवोल्यूशन ऐण्ड एथिक्स" नामक ग्रंथ में बताया है, उन जीव वैज्ञानिकों के लिए विकास का अर्थ अस्तित्व के लिए संघर्ष और उसमें योग्यतम का ही अवशिष्ट रह जाना मात्र था जबकि नीतिशास्त्र के अनुसार विकास का अर्थ होता है—यथासंभव अधिक-से-अधिक लोगों को अपने अस्तित्व रक्षण के लिए समर्थ बना देना। इस प्रकार

उन्नीसवीं शती में विकास की कल्पना नीतिशास्त्र के समानान्तर चल रही थी, किन्तु बीसवीं शताब्दी में जीवविज्ञान में जो क्रांतिकारी प्रगति हुई है उसने मानवीय स्तर पर नैतिकता को विकास का केन्द्रविन्दु मान लिया है।

आधुनिक युग के प्रमुख जीवविज्ञान वेत्ता सर जूलियन हक्सले ने "विकास की परिकल्पना" विषय पर विचार करते हुए विकास प्रक्रिया को एक आध्यात्मिक दिशा दी है :

मनुष्य का विकास जैव विकास न होकर मनः सामाजिक विकास है; यह उस सांस्कृतिक परम्परा के माध्यम से क्रियान्वित होता है जिसमें मानसिक क्रियाकलापों एवं उनके परिणामों का समुच्चयात्मक आत्मप्रक्षेपण और आत्मवैविध्य निहित होता है। इसीलिए विकास के मानवीय स्तर पर प्रगति के प्रमुख चरण ऐसी वैचारिक एवं मानसिक क्रांतियों द्वारा अग्रसर होते हैं जिनसे ज्ञान, विचार और विश्वासों के मानसिक संघटन में नये प्रभावी प्रतिरूप उभर आते हैं। यह संघटन शरीर-सांस्थानिक या जैव न होकर वैचारिक होता है।[4]

बीसवीं शताब्दी में जीवविज्ञान में हुई क्रांतिकारी प्रगति के प्रकाश में मानवीय विकास का लक्ष्य "महत्तर परिपूर्णता" को मानते हुए हक्सले कहते हैं :

अपने वर्त्तमान ज्ञान के प्रकाश में हम यह कह सकते हैं कि मानव का सर्वाधिक व्यापक लक्ष्य मात्र अस्तित्व-रक्षण, संख्यावृद्धि, संघटन की वर्तमान जटिलता अथवा पर्यावरण पर उसका वर्तमान नियन्त्रण न होकर एक महत्तर परिपूर्णता ही दिखाई देता है। यह परिपूर्णता मानव जाति द्वारा सामूहिक रूप में अधिकाधिक संभावनाओं की अपेक्षाकृत व्यापक उपलब्धि और व्यक्तिगत रूप से उसके अधिकाधिक सदस्यों के सह-अस्तित्व की चेतना में निहित है।[5]

परिपूर्णता की इस अवधारण की व्याप्ति वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता पर जोर देते हुए हक्सले इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि :

यदि हम एक बारगी महत्तर परिपूर्णता को मनुष्य का चरम अथवा सर्वाधिक प्रभुत्वकारी लक्ष्य मान लेते हैं तो हमें मानवीय संभावनाओं के एक ऐसे विज्ञान की आवश्यकता होगी जो आगे आनेवाले मनः सामाजिक विकास की दीर्घयात्रा में हमारा मार्गदर्शन कर सके।[6]

अन्तरमानवीय संबंध में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए गाँधीजी ने जो संदेश दिया है उससे "मानवीय संघटन के नये मानसिक प्रतिरूपों की दिशा में अग्रसर वैचारिक क्रांतियों" जैसी एक प्रमुख क्रांति ही परिलक्षित होती है। गाँधीजी कहते हैं :

आश्चर्यों के इस युग में कोई यह न कहेगा कि कोई वस्तु या विचार केवल इसीलिए मूल्यहीन है कि वह नया है। फिर कठिन होने के कारण भी इसे असंभव कह देना युग की भावना के अनुरूप नहीं है। जिन चीजों की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की गयी थी वे दिन-प्रतिदिन प्रत्यक्ष होती जा रही हैं, असंभव निरन्तर सम्भव बनता जा रहा है। हम हिंसा के क्षेत्र में की गयी आश्चर्यजनक खोजों से आजकल निरन्तर चकित होते जा रहे हैं, किन्तु यह मेरी मान्यता है कि अहिंसा के क्षेत्र में ऐसी खोजें होंगी जो और भी अकल्पनीय हैं और जो आज कहीं अधिक असम्भव दिखाई देती हैं।[7]

यही वह विज्ञान है जो संसार के समस्त धर्मों का आध्यात्मिक सारतत्त्व है। यही मानवीय संभावनाओं का विज्ञान है। गाँधीजी ने इसी विज्ञान को अपने संदेश और उससे भी बढ़कर अपने जीवन और उदाहरण से अत्यधिक समृद्ध बनाया है।

(डॉ० राधाकृष्णन् द्वारा सम्पादित महात्मा गाँधी १०० वर्ष : से साभार)

---

१. ऐन आटोबायोग्राफी, भूमिका, पृष्ठ ४-५।
२. निर्मल कुमार बोस, सेलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, पृष्ठ १०९।
३. डी० जी० तेण्डुलकर, लाइफ ऑव मोहनदास करमचन्द गाँधी, भाग ५, पृष्ठ ३४३।
४. जूलियन हक्सले, एवोल्यूशन आफ्टर डार्विन, भाग ३, पृष्ठ २५१।
५. वही, भाग १, पृष्ठ २०। ६. वही, पृष्ठ २१। ७. हरिजन, २५-८-१९४०, पृष्ठ २६०।

स्वामी विवेकानन्द और देश-भक्ति

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

सन् १८९७ ई० में अमेरिका से भारत लौटने पर स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों को आह्वान करते हुए कहा था, आगामी पचास वर्षों के लिए जननी जन्म-भूमि ही तुम्हारी आराध्य देवी होवे। तबतक के लिए अन्य सभी देवी-देवताओं को भुला दो।

स्वामीजी की इस पुकार को किसी न किसी रूप में भारत के नेताओं, स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों, देश-भक्तों, समाज-सुधारकों एवं क्रान्तिकारियों ने सुना था, और उसके ठीक ५० वर्षों के भीतर भारत स्वाधीन हो गया। स्वाधीनता के बाद सैंतीस वर्ष और बीते हैं, और हम अब प्रगति के बावजूद अशान्ति, दूरवस्था, नैतिक ह्रास एवं सांप्रदायिक कलह के चिह्न सारे राष्ट्र में पाते हैं। हम सभी, जिनमें राष्ट्रीय चेतना है, प्रश्न करते हैं कि स्वाधीन होने बाद इस अवनित का कारण क्या है? क्या हम सही दिशा में बढ़ रहे है? स्वाधीनता के पूर्व का उत्साह, त्याग की भावना और देश के लिए मर मिटने का जोश, यह सब कहाँ लुप्त हो गया है? हम मार्गदर्शनि के लिए स्वामी विवेकानन्द की ओर मुड़ते हैं; जो स्वयं एक महान देश भक्त थे।

भारत निर्माण का लक्ष्य—

सर्वप्रथम तो हमें यह याद रखना चाहिये कि स्वामी विवेकानन्द एक युगद्रष्टा ऋषि थे। हम अपनी क्षुद्र सीमित दृष्टि से भारत के इन १०-२० वर्षों की अवनत दशा को देखकर चिन्तित हो उठत हैं। लेकिन स्वामीजी अपनी अन्तर्दृष्टि से भारत के आगामी ५०० वर्षों को स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ थे, जिसे देख कर उन्होंने भविष्यवाणी की थी, "हमारी मातृभूमि अपनी गंभीर निद्रा से अब जाग रही हैं। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर सो भी नहीं सकती। कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती क्योंकि यह असाधारण शक्ति का देश अब जाग कर खड़ा हो रहा है।" अत: निराश होने का कोई कारण नहीं है

भारत के स्वाधीनता-सेनानियों के सामने एक राष्ट्र की राजनैतिक आजादी का एक लक्ष्य था। लेकिन स्वाधीनता के बाद सभी के मन में राष्ट्र निर्माण अस्पष्ट होने के कारण हम एक के बाद दूसरी गलती करते जा रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द के सामने भावी भारत का चित्र एवं लक्ष्य स्पष्ट थे। वे भारत को संसार के सभी राष्ट्रों के आध्यात्मिक नेता के रूप में देखना चाहते थे। यही है वह चिरंतन सिंहासन, जिसपर वे भारतमाता को पूर्वापेक्षा महागौरव मण्डित करके भक्तिभाव से प्रतिष्ठित करना चाहते थे। वे भारत में एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें त्याग, सत्य, अहिंसा, निःस्वार्थता आदि उच्चतम नैतिक आदर्शों का आदर हो, जिनका क्रियान्वयन जिस समाज में संभव हो, तथा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तर्निहित देवत्व को अभिव्यक्त करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो। भारत निर्माण में लगे प्रत्येक व्यक्ति को लक्ष्य की यह धारणा स्पष्ट होनी चाहिये।

देशभक्ति की तीन शर्तें—

उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तीन बातों की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार -'मैं देशभक्ति में विश्वास करता हूँ, और देशभक्ति की मेरी अपनी धारणा है। बड़े काम करने के लिये तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है—हृदय की अनुभव शक्ति। क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और

ऋषियों की करोड़ों सन्तानें आज पशुतुल्य हो गयी हैं ? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखों मरते आये हैं ? .....क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो ? क्या इस भावना ने तुम्हें निद्राहीन बना दिया है ? .....क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है ? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-संपत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध बिसर गये हो ? क्या तुमने ऐसा किया है ? यदि हाँ, तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है, हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर।

"अच्छा माना कि तुम अनुभव करने हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने का कोई यथार्थ कर्त्तव्य पथ निश्चित किया है ? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है ? यही दूसरी बात है।

"किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वत के समान विघ्न बाधाओं को लाँघ कर कार्य करने के लिए तैयार हो ? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाये, तो क्या तुम जिसे सत्य समझते हो उसे पूरा करने का साहस करोगे ? क्या तुम उसके पीछे लगे रह कर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे ? .....क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है ? ...यदि तुममें ये तीन बातें हैं, तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकता है।" अतः स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सच्चे देशभक्त होने के लिये तीन बातों की आवश्यकता है—हृदय की संवेदनशीलता और विशालता, कार्य की एक योजना और उसे कार्यरूप देने की क्षमता और दृढ़ता।

आदर्श देशभक्त स्वामी विवेकानन्द

अब यह देखने का प्रयत्न किया जाय कि जो तीन गुण देशभक्ति के लिए आवश्यक हैं, क्या वे स्वयं स्वामीजी में थे ?

स्वामीजी की हृदयवत्ता के अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। अमेरिका जाने के पूर्व उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्दजी से कहा था, 'भाई मैं नहीं जानता कि धर्म क्या है, पर इतना अवश्य है कि मेरा हृदय विशाल हो गया है, और मैं अनुभव करने लगा हूँ।' अमेरिका में धर्म महासभा में जिस दिन विजयी हो विश्व-विख्यात हो गये थे, उसी दिन एक अमीर के घर पर जब वे एक आलीशान कमरे में अतिथि के रूप में रात्रियापन कर रहे थे, तब वे भारत की दरिद्रता व दुर्दशा का विचार कर सारी रात सो नहीं सके वे फर्श पर ही खड़े रहे, तथा रोते-रोते भारत के असंख्य नर-नारियों की समृद्धि के लिए प्रार्थना करते रहे। अपने पत्रों में भी वे इस बात को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, "भाई, यह सब देखकर खासकर, देश की दरिद्रता और अज्ञता देखकर मुझे नींद नहीं आती थी।"

इसी पत्र में स्वामीजी भारत की उन्नति की अपनी योजना का उल्लेख करते हुए कहते हैं, "कन्याकुमारी में, माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारत की अन्तिम शिला (जो विवेकानन्द शिला के नाम से प्रसिद्ध है और जिसपर अब विवेकानन्द शिला स्मारक बना है) पर बैठकर मैंने एक योजना सोच निकाली, यदि कुछ निःस्वार्थ परोपकारी संन्यासी गाँव-गाँव घूमकर विद्यादान करें और विभिन्न उपायों से चाण्डाल तक सबकी उन्नति के लिए प्रयत्न करें तो क्या समय पर इससे मंगल नहीं होगा ?" कन्याकुमारी की शिला पर जो योजना सूक्ष्म रूप में स्वामीजी के मन में उदित हुई थी, वही बाद में एक चार-सूत्री व्यापक योजना के रूप में विकसित होती है। भारत निर्माण की स्वामीजी की योजना के निम्न चार अंग हैं :—

(१) धर्म का पुनर्जागरण—स्वामीजी के अनुसार भारत की दुर्दशा का कारण धर्म नहीं है, बल्कि सच्चे धर्म की उपेक्षा कर केवल बाह्य क्रिया-अनुष्ठान, कुछ लोकाचारादि को ही धर्म मान लेना ही अवनति का

कारण है। धर्म तो भारत का प्राण है। धर्म अनुभूति के साक्षात्कार का विषय है. तथा स्वामीजी के अनुसार प्रत्येक जीव में अन्तर्निहित देवत्व की अभिव्यक्ति ही धर्म है। यह अभिव्यक्ति चार प्रकार से की जा सकती है, जिन्हें ज्ञानयोग, राजयोग, कर्मयोग और भक्तियोग कहा जाता है। इन चारों योगों की शिक्षा देने के साथ ही स्वामीजी ने एक और मार्ग बताया हैं, जिसमें इन चारों योगों का समावेश हो जाता है, तथा जो आधुनिक युग के सबसे अनुकूल है। वह है "शिव ज्ञान से जीव सेवा का मार्ग। अगर दरिद्र, रोगी, पीड़ित, अज्ञानी व्यक्ति की ईश्वर मान कर सेवा की जाय तो यह सेवा कार्य पूजा में परिणत हो जाता है, तथा मोक्ष प्राप्ति का उपाय बन जाता हैं।

(२) स्वामीजी की योजना का दूसरा अंग है शिक्षा—स्वामीजी के अनुसार पुस्तक-विद्या या नाना प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा नहीं हैं। "जिस संयम के द्वारा इच्छाशक्ति का प्रवाह और विकास वश में लाया जाता हैं, और वह फलदायक होता है, वह शिक्षा कहलाती है।" शिक्षा का मतलब यह नहीं कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें ठूंस दी जायँ जो आपस में लड़ने लगें और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर हजम न कर सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें चरित्र गठन कर सकें और आदर्शों को आत्मसात् कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है।" "हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो, और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे।"

(३) भारत की मौलिक समृद्धि—भारत में धर्म के पुनर्जागरण के साथ साथ भौतिक समृद्धि के लिए भी प्रयत्न करना होगा, क्योंकि भूखे पेट धर्म नहीं होता। 'पेट की चिन्ता से भारत बेचैन है। धर्म की बात सुनाना हो तो पहले इस देश के लोगों के पेट की चिन्ता को दूर करना होगा।' 'यह कहीं ज्यादा अच्छा होगा कि यह उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी के लिए दफ्तरों की खाक छानने के बजाय लोग थोड़ी सी यांत्रिक शिक्षा प्राप्त करें जिससे काम धंधे से लगकर अपना पेट तो पाल सकें।"

(४) नारी-जाति का उत्थान—स्वामी विवेकानन्द ने यह योजना केवल मौखिक रूप से ही बनायी नहीं थीं, बल्कि उनमें उसे कार्य रूप में परिणत करने की क्षमता भी थी।

भारत निर्माण की योजना को कार्य रूप देने के लिए स्वामीजी सर्वत्यागी संन्यासियों का एक संघ बनाना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि उन्हें इस प्रकार के त्यागी एवं सेवाभावी दस-पन्द्रह युवक प्रति नगर से मिल जायँगे। जो दूसरी आवश्यकता थी, वह था धन। धनोपार्जन के लिए स्वामीजी अमेरिका गये तथा वहाँ पर अकेले उन्हें ईसाई-मिशनरियों, तथा कुछ भारत-वासियों के कड़े विरोध एवं झूठे निन्दावाद का सामना करना पड़ा। फिर भी वे एक सच्चे वीर योद्धा के समान डटे रहे। भारत लौटने पर कुछ कट्टरवादी लोगों तथा ईर्ष्यालु लोगों ने स्वामीजी का विरोध किया। यही नहीं, स्वयं स्वामीजी अपने लक्ष्य की ओर बिना रुके बढ़ते चले गये।

राष्ट्र निर्माण तथा समग्र विश्व में वेदान्त का प्रचार करने के लिए स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ की स्थापना की, जिसका उद्देश्य रखा, "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" भारत की सर्वांगीण उन्नति के लिए संघ सभी प्रकार के सेवा कार्य करता है। अन्न-वस्त्र की व्यवस्था से लेकर भौतिक विज्ञान की शिक्षा और धर्म का प्रसार व प्रचार, इन सभी के माध्यम से स्वामीजी की योजना को संघ के ११८ केन्द्रों द्वारा कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न किया जाता है।

लेकिन इतने बड़े राष्ट्र के लिए कुछ सौ संन्यासियों के संघ के कार्य, चाहे वे कितने ही महान एवं उच्च कोटि के क्यों न हों, पर्याप्त नहीं हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि अधिक से अधिक भारतवासी विशेषकर भारत के युवक विवेकानन्द के आदर्शों से अनुप्राणित हो स्वयं तथा राष्ट्र के निर्माण के कार्य में लग जायँ। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार त्याग और सेवा भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं। जितने लोग इस आदर्श को स्वीकार करेंगे, उतना ही अधिक भारत का कल्याण होगा।

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

—मन्मथनाथ गुप्त

अनुवादक—श्री विवेकानन्द यादव

स्वामीजी के कुछ उद्‌गार :

उनके अन्तिम दर्शन मुझे उनकी महासमाधि के कुछ महीने पूर्व हुए थे। अपनी दीक्षा के समय से लेकर जनवरी, १९०२ के प्रारम्भ तक कई ऐसे अवसर आये जब मैं बेलुड़ मठ गया था। चूँकि उन संस्मरणों को उस समय लिपिबद्ध नहीं किया, अतः उसके लिए अब सही तिथि निर्धारण करना असंभव है। लेकिन कुछ बातें जो मैंने उनसे सुनीं, उन्हें यहाँ प्रस्तुत करने की चेष्टा करूँगा।

एक बार उन्होंने कहा, "यह शरीर अब फिर से स्वस्थ नहीं हो सकेगा। मुझे इसे छोड़ना पड़ेगा तथा शेष कार्यों को पूरा करने के लिए दूसरा शरीर धारण करना पड़ेगा। बहुत से कार्य वैसे ही पड़े हुए हैं।"

एक बार पहले दिव्यभाव में आरूढ़ होकर उन्होंने कहा था, "मैं मुक्ति नहीं चाहता। जबतक एक भी जीव बँधा हुआ रहेगा, मुझे बार-बार आना होगा।"

चीन की आन्तरिक स्थिति राजनैतिक रूप से बहुत दयनीय थी। यूरोप के कई शक्तिशाली राष्ट्र चीन को अपने बीच बाँट लेना चाहते थे। इस शोषण में जापान भी उन राष्ट्रों के साथ हो गया और चीन पर आक्रमण कर दिया। एक दिन मैंने स्वामीजी से पूछा, "चीन एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है। आपका क्या विचार है कि यह प्राचीन राष्ट्र अपनी सभ्यता के साथ मर जायगा?" वे कुछ देर मौन रहकर बोले, "मैं सामने एक हाथी का शरीर देख रहा हूँ। उसके भीतर एक बछेड़ा (घोड़े का बच्चा) है। परन्तु इसके भीतर से सिंह-शावक बाहर निकलता है। यह भविष्य में विकास करेगा और चीन एक महान एवं शक्तिशाली राष्ट्र होगा।"

भारत की आजादी के संबंध में उन्होंने कहा, "हमारा देश आजाद होगा। परन्तु रक्तपात से नहीं। आजादी के बाद भारत का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।" उस समय उन्होंने यह नहीं कहा कि कब? लेकिन दूसरे गुरुभाई से मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होंने कहा था, "भारत पचास वर्षों के भीतर स्वतंत्र होगा।"

एक बार मैंने पूछा, "मेरा क्या होगा यदि मैं आपकी आज्ञा नहीं मानता हूँ और लक्ष्यच्युत हो जाता हूँ?" उन्होंने कहा, "तुम जाओ और पतन के गहरे गर्त में या नरक में गिर जाओ। यह मैं हूँ, जो तेरी चोटी पकड़कर तुझे वहाँ से खींचकर बाहर लाऊँगा। इस धरती पर कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो तुझे गिरा सके।"

एकबार उन्होंने आकस्मिक रूप से कहा, "भविष्य में कई महान आत्माएँ जन्म लेंगी। वे जन्म से ही मुक्त होंगी और कुछ तो श्रीरामकृष्ण का केवल नाम ही सुनकर मुक्त हो जाएँगी।"

उन्होंने कहा, "मैं अपने कार्य के लिए संन्यासियों का एक दल चाहता हूँ। परन्तु कार्य को सुव्यवस्थित रखने के लिए केन्द्र के रूप में कुछ अच्छे माता-पिता की भी आवश्यकता है। इससे भावी समाज की उत्पत्ति होगी जो अपनी उज्ज्वलता में प्राचीन भारत को भी पीछे छोड़ देगा।"

नारी उत्थान के संबंध में उन्होंने कहा, "नारी-उत्थान के लिए किसी बँधी-बँधायी योजना की जरूरत नहीं है। उन्हें अच्छी शिक्षा दो और स्वतंत्र छोड़ दो। वे अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं ढूँढ़ लेंगी।"

यहाँ कुछ घटनाओं का वर्णन है जिन्हें मैंने स्वामीजी के मुख से सुना था तथा जिनके संबंध में दूसरों ने भी

है। जैसा मैंने सुना था, वैसा यहाँ वर्णन कर रहा हूँ।

स्वामीजी ने कहा, "उस समय मैं हिमालय में चाकरी करके रहता था। मेरा अधिकांश समय कठोर अवस्था में व्यतीत होता था; और खाना जो मिलता था वह अत्यन्त ही रूखा-सूखा, प्रायः वह क्षुधा निवारण के लिए पर्याप्त नहीं होता था। एक दिन मैंने सोचा, मेरा जीवन बेकार है। ये पहाड़ी लोग स्वयं अत्यन्त निर्धन हैं। वे अपने परिवार एवं बच्चों को ठीक ढंग से खिला नहीं पाते हैं, तिस पर भी, मेरे लिए कुछ बचाने की चेष्टा करते हैं। तब इस जीवन की क्या उपयोगिता रही ? मैंने चाकरी करना छोड़ दिया। दो दिन बिना भोजन के बीत गये। जब कभी भी प्यास लगती, मैं अंजली भरकर बर्फ की एक धारा से अपनी प्यास बुझाता था। उसके बाद मैं अधिक घने जंगल में घुस गया। वहाँ एक चट्टान पर बैठकर ध्यान करने लगा। मेरी आँखें खुली थीं और अकस्मात मैंने एक बड़े आकार का धारीदार बाघ अपने सामने पाया। वह अपनी जलती आँखों से मुझे घूर रहा था। मैंने मन ही मन विचार किया, "अहा ! अन्ततः मैं शान्ति पा सकूँगा और यह पशु अपना भोजन। यदि यह शरीर इस पशु की कुछ सेवा में लग सके तो यही मेरे लिए पर्याप्त होगा।" मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं तथा कुछ देर प्रतीक्षा की। कुछ क्षण बीत गये, किन्तु मुझ पर आक्रमण नहीं हुआ। जब मैंने आँखें खोलीं तो देखा कि बाघ जंगल में पीछे लौट रहा है। मैं इसके लिए दुःखी था और फिर मुझे हँसी भी आ गयी। क्योंकि मैं जानता था कि यह ठाकुर हैं (श्रीरामकृष्ण देव) जो अपना कार्य पूरा होने तक मेरी रक्षा कर रहे हैं।

कुछ अभ्युक्तियाँ :

भारत एवं अमेरिका की राष्ट्रीय भावधारा के संबंध में यहाँ कुछ उनकी अभ्युक्तियाँ उल्लेखित हैं। वार्त्तालाप एवं उपदेश के क्रम में उन्होंने इन सामयिक मन्तव्यों को प्रकट किया था।

"अमेरिका में मैंने लोगों को पूर्ण रजोगुणी पाया। अब वे सतोगुण की ओर बढ़ने का प्रयास करेंगे। समस्त यूरोप रजोगुण प्रधान है, किन्तु अमेरिका उन सब में आगे है।"

"ऋषियों के समय में भारत सत्व-प्रधान था। अभी भी अस्थि और मज्जा के भीतर से भारत सतोगुणी है। संसार के सभी देशों के मध्य भारत अब भी किसी की भी अपेक्षा अधिक सात्विक है। किन्तु बाहर से यह पूर्णरूपेण तमसाच्छादित हो गया है। बहुत समय से यह एक भयावह तूफान के बीच से गुजर रहा है और इसके बुरे दिन अब भी नहीं टले हैं। यह भूख है, जो संपूर्ण राष्ट्र को मरणासन्न बना रही है और सारी जाति धीरे-धीरे मिटती जा रही है, हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें भोजन और शिक्षा दें।"

एक बार उन्होंने कहा, "अमेरिका में बिस्तर बहुत मुलायम और आरामदेह होते हैं। ऐसी चीजें तो यहाँ देखने को भी नहीं मिलतीं। परन्तु कई ऐसी रातें रहीं जब मैं अपने लोगों की अत्यधिक निर्धनता के बारे में सोचते हुए, उन मुलायम, आरामदेह बिस्तरों पर चैन से सो नहीं सका। वे रातें मैंने बेचैनी से फर्श पर चहल-कदमी करते हुए बिना नींद और विश्राम के काट दीं।"

"भारत की स्थिति सुधारने के लिए उसे उचित रूप में भोजन तथा वस्त्र देना होगा। लोगों को शिक्षा देनी होगी। निर्धन लोग साक्षात नारायण हैं। उनकी सेवा अन्न और शिक्षा से करनी होगी।"

"अस्थि के भीतर से भारतीय धार्मिक हैं। भोजन एवं वस्त्र के अभाव में उनकी आध्यात्मिक अग्नि मद्धिम पड़ गयी है। जब कोई अभाव नहीं रहेगा और वे कुछ शिक्षा पा सकेंगे, तब उनकी आध्यात्मिक अग्नि एकबार फिर प्रज्वलित हो उठेगी।"

"बाल विवाह तथा विधवा-विवाह आदि के संबंध में अधिक चर्चा मत करो और न उसके संबंध में अधिक

सोचने की जरूरत है। जब स्त्रियाँ उचित शिक्षा पाएँगी तथा विदुषी होंगी तब वे अपनी समस्याओं को स्वयं हल कर लेंगी।"

ब्रह्मचर्य एवं मेधा के संबंध में वे सनातनी विचार धारा के प्रतीत हुए। मैंने उन्हें उनकी अपनी अद्भुत स्मरण शक्ति के संबंध में निम्न ढंग से कहते सुना—"अगर कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक वीर्य को अपने शरीर में पचा ले, तो उसे असाधारण स्मृति की प्राप्ति होगी। व्यक्ति को ब्रह्मचारी रहना होगा तथा अपने ब्रह्मचर्यव्रत का पालन दृढ़ता से करना होगा। स्वप्न में भी वीर्यपात नहीं होना चाहिए। उसके बाद ही मेधा नाम की नाड़ी खुलती है। तब वैसा व्यक्ति जो कुछ भी एकबार पढ़ता है, सुनता है, उसे वह कभी नहीं भूलता है।"

एकबार उन्होंने मुझसे कहा, "यह जान लो कि संन्यासी ही गृहस्थ के गुरु हैं। यदि तुम गेरुआमात्र भी देखते हो तो श्रद्धापूर्वक प्रणाम करो। अपने गुरु के बारे में सोचो तथा उस व्यक्ति की श्रद्धा करो चाहे वह योग्य हो या अयोग्य। अपने सामने वैराग्य का आदर्श रखो। गेरुआ वस्त्र तुम्हें उच्चतम ज्ञान और वैराग्य का स्मरण दिलायगा।"

साधु नाग महाशय :

एक दिन हमलोग मठ के दाहिने भाग वाले कमरे में गंगा की ओर मुख करके बैठे थे। इसे संगीत-कक्ष कहा जाता था। साधु नाग महाशय कमरे में प्रविष्ट हुए। उन्होंने धोती तथा कमीज पहन रखी थी। उनके वस्त्र जैसे भी हों, किन्तु साफ-सुथरे थे। उनके बाल बिखड़े हुए थे, आँखें लाल थीं, मानो वे मदोन्मत्त हों और दृष्टि शून्य भावापन्न। कमरे के भीतर वे दरवाजे के समीप खड़े थे और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "आप नारायण हैं—नररूपी नारायण। ठाकुर ऐसा कहते थे। आपको मेरा प्रणाम है।" कुछ देर तक वहाँ वे बिल्कुल मूर्त्ति की तरह निश्चल खड़े रहे।

स्वामीजी ने हमलोगों की ओर देखकर कहा, "देखो! इस दृश्य को अपने मानस पटल पर अंकित कर लो। ऐसा तुमलोग फिर कभी नहीं देख सकोगे।" जब नाग महाशय ने पुनः अपनी आँखें खोलीं तब स्वामीजी ने कहा, "कृपया आप हमलोगों को ठाकुर के बारे में कुछ कहिए।" स्वामीजी न तो स्वयं उठे और न उन्हें बैठने के लिए कहा, क्योंकि वैसा प्रयास उनके आध्यात्मिक भाव को नष्ट कर डालता जिससे वे उस समय अभिभूत थे तथा नागमहाशय भी स्वयं कष्ट अनुभव करते।

शिवलोक का दर्शन करने वाले देवताओं की तरह अचानक नागमहाशय के मुखमंडल पर एक स्वर्गीय मुस्कान झलमला उठी। उन्होंने अपने दाँएँ हाथ को आधा उठाया और कहा, "यह ऐसा ही है, ठीक ऐसा ही।" सब ने उस समय आध्यात्मिक ऊर्जा के आवेश को महसूस किया और कमरे का वातावरण भय एवं श्रद्धा से आविष्ट था। (समाप्त)

"समस्त कर्म भगवान् को अर्पण कर दो। संसार में रहो, किन्तु सांसारिक मत बनो—जैसे पद्मपत्र का मूल कीचड़ में रहता है किन्तु वह पत्र सर्वदा शुद्ध रहता है। लोग तुम्हारे प्रति चाहे जैसा व्यवहार करें, किन्तु तुम्हारा किसी के भी प्रति प्रेम घटना नहीं चाहिए। जो अन्धा है, उसे रंग का ज्ञान कभी नहीं हो सकता—अतएव जब हममें दोष नहीं है तो हम दूसरे का दोष देखेंगे कैसे? ..... यदि हम स्वयं पवित्र हैं, तो हमें बाहर अपवित्रता नहीं दिखायी देगी। बाहर अपवित्रता हो सकती है, किन्तु हमारे लिए उसका अस्तित्व नहीं होगा। प्रत्येक नरनारी और प्रत्येक बालक-बालिका के भीतर ब्रह्म का दर्शन करो, अन्तर्ज्योति के द्वारा उसे देखो; यदि हमें सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन होता है, तो हम इसके अतिरिक्त और कुछ देख ही नहीं सकते। —स्वामी विवेकानन्द

अमरीका में भारतीय मंदिर

—मनमोहन वशिष्ठ
७ यू० बी० जवाहर नगर, दिल्ली-७

यह एक बड़ा हाल था, जिसमें करीब १०० आदमी बैठ सकते थे। अन्दर की तरफ दीवार के साथ 'आल्टर' पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस का चित्र रखा था। इसके इर्दगिर्द दो सुन्दर ताजे फूलों के गुलदस्ते और इनसे कुछ दूर जमीन पर दो बड़े गमले रखे थे। सफेद वस्त्र पहने हारमोनियम के साथ एक उपदेशक अपने सामने कुर्सियों पर बैठे गोरे भक्तों को भारतीय धर्म और स्वामी रामकृष्ण के वचनामृत, मधुर स्वर में सुना रहा था और गोरे भक्त श्रद्धा से सीधे बैठे हुए आत्म-विभोर होकर उपदेश सुन रहे थे। मंदिर का यह सुन्दर दृश्य, सांता बारबरा (कैलीफोर्निया) स्थित वेदांत मंदिर का था। दक्षिण कैलीफोर्निया में स्थापित वेदांत संस्था ने अमरीका के अनेक स्थानों पर अपने मंदिर बना रखे हैं, जहाँ हर रविवार को सुबह रामकृष्ण परमहंस के विचारों से भारतीय धर्म और संस्कृति में आस्था रखनेवाले अमरीकियों को परिचित कराया जाता है।

भारतीय सभ्यता विशिष्ट है

भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व संस्कृति में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसका अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। इसमें एक ओर जहां उज्ज्वल नामों की नक्षत्रमाला है, वहाँ दूसरी ओर कलात्मक सृजनों की परम्परा और वैज्ञानिक गवेषणाओं की समष्टि दृष्टिगोजर होती है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की यह उपलब्धि आज के चरम वैज्ञानिक युग में सर्वोच्च और सर्वमान्य सिद्ध हुई है। भारत का लम्बा इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमने शक्तिशाली होते हुए भी अपने विचारों और मान्यताओं को न तो किसी पर बलपूर्वक थोपा और न लादा है। प्रेम, सेवा, सहयोग, स्नेह, परिश्रम और ज्ञान का आलोक दिखाकर दूसरों को अपनी ओर आकर्षित किया है। यही कारण है कि आज भी दुनिया के हर हिस्से में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला और अमर विचारों की छाप अंकित है। अध्यात्म का जो प्रकाश भारत ने वर्षों पूर्व विदेशों में फैलाया था, वह जन-जन के मन को आज भी आलोकित कर रहा है।

धार्मिक क्षेत्र में क्रांति

सन् १९५९ के बाद से अमरीका के धार्मिक क्षेत्र में एक नयी क्रांति शुरू हुई जबकि भौतिकवादी मशीनी संस्कृति में डूबे गोरे नस्ल के लोगों को दुनिया के विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के आचार्यों, उपदेशकों और पंडितों ने प्रभावित करना शुरू किया और अपने धर्म, योग और ध्यान का प्रचार करना शुरू किया। इस समय में दुनिया के कई देशों की धार्मिक संस्थाएँ, संप्रदाय और व्यक्ति अपने मत और विचार-धारा का प्रचार करने अमरीका में आने लगे और कुछ स्थानों पर अपने मुख्य प्रचार केन्द्र खोले। इनमें मुख्य हैं—बालक की आँखों से अग्नि निकलते हुए प्रतीक के रूप में ईश्वर-ध्यान का उपदेश देनेवाले डविड मोसेज वर्ग, कोरिया से आये सनम्युंग मून, ध्यान-योग प्रचारक महर्षि महेश योगी (मुख्य केन्द्र—स्विटजरलैंड) बालयोगेश्वर (मुख्य केन्द्र—मियामी-अमरीका), सूफी विचारधारा के प्रचारक इनायत खान (मुख्य केन्द्र—पेरिस, फ्रांस), ध्यान-प्रचारक श्री चिनमूव (मुख्यकेन्द्र—न्यूयार्क)। और सैलानी प्रचारक कृष्णमूर्ति, योगी भजन और स्वामी चिन्मयानन्द आदि ने कैलीफोर्निया, रोम, एमस्टरडम और लंदन में घूम-घूमकर अपनी विचार-धारा से गोरे लोगों को आकर्षित किया। अन्य धर्मावलंबियों, मत-मतांतरों के साथ-साथ भारतीय धर्म का अमरीका में

तेजी से प्रचार हुआ। आज यहां धूप अगरबत्ती से महकते, घंटे-घड़ियाल की मधुर ध्वनियों से गूंजते कई सौ भारतीय मंदिर अमरीका के गोरे लोगों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैला रहे हैं।

हरे राम, हरे कृष्ण !

सन् १९६० में हरे राम, हरे कृष्ण, की तान अमरीका में गूंजने लगी। गेरुआ धोती-कुरता पहने मृदंग-मजीरे बजाते, गले में पवित्र तुलसी की कंठी बांधे, मस्तक पर गौडीय संप्रदाय का वैष्णव तिलक लगाये और गोखुर-प्रमाण जिखा धारण किये, सांवरे कृष्ण के, गोरे भक्तों के टोलियां अमरीका के हिस्से में तेजी से दिखलायी देने लगी थीं और इसके बाद से ही अमरीका के विभिन्न हिस्सों में न्यूयार्क, शिकागो, कैलीफोर्निया, स्प्रिंगफील्ड, वाशिंगटन तथा अन्य अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण-भक्ति धारा को फैलाने वाले स्वामी श्री प्रभुपादस्वामी ने जगह-जगह श्रीकृष्णकेन्द्र और श्रीराधा-कृष्ण मंदिरों की स्थापना की। आज अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावना संघ द्वारा अमरीका में स्थापित मंदिरों में गोरे भक्तों को नाचते-गाते देखा जा सकता है।

देशी धर्म के विदेशी भक्त

सन् १९७१ में डिवाइन लाइट मिशन के १३ वर्षीय धर्मगुरु बालयोगेश्वर ने अपने प्रवचनों से अमरीकियों को खूब आकर्षित किया और देखते-देखते अमरीका में इनके हजारों भक्त बन गये। सन १९७४ में बालयोगेश्वर ने मलिबू के ट्रांकास केन्यान रोड स्थित एक बहुमंजिली इमारत को अपना सत्संग-केन्द्र बनाया और धर्म का प्रचार शुरू किया। आज इसके मियामी, हस्टन, डेनवर, कालोरिडो तथा अन्य कई स्थानों पर प्रवचन केन्द्र बन गये हैं, जहां हजारों गोरे भक्त भारतीय धर्म पर प्रवचन सुनने आते हैं।

अमरीका में सर्वप्रथम स्वामी रामकृष्ण परमहंस का प्रचार शुरू हुआ और आज यहां अनेक स्थानों पर वेदांत सोसायटी बन गयी हैं, जिनके द्वारा स्थापित वेदांत मंदिरों में रामकृष्ण एवं विवेकानन्द की विचारधारा और भारतीय धर्म का अमरीका में प्रचार किया जाता है। अमरीका में उत्तरी कैलीफोर्निया की वेदांत सोसायटी द्वारा निर्मित रामकृष्ण हिन्दू मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। यह मंदिर २९६३ वैवस्टर स्ट्रीट, सानफ्रांसिस्को में स्थित है। यह मंदिर सर्व-धर्म समभाव का जीता-जागता उदाहरण है। इस मंदिर की निर्माण-शैली में हिन्दू-मुसलमानों और एंग्लो सैक्सन वास्तुकला के रूपों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। सन १९०५ में स्वामी त्रिगुणातीतानन्द द्वारा निर्मित इस मंदिर के परकोटे और इनके रंगीन कंगूरे आकर्षक हैं। वेदांत सोसायटी द्वारा २३२३ वैलोजी स्ट्रीट में बना नया मंदिर भी अनूठा है। साफ-सुथरे इस मंदिर में एक सुन्दर आलानुमा सिंहासन बना हुआ है जिसके ऊपर 'ॐ' गोल लकीरों में बना हुआ है और इसके नीचे ईसामसीह, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, शारदादेवी (रामकृष्ण की पत्नी) और बुद्ध की तस्वीरें हैं, जो भारतीय धर्म के प्रेम, अहिंसा, सहिष्णुता, समभाव, भ्रातृत्व-भावों का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत कर गोरे लोगों को समता का संदेश दे रही हैं। यहां भी दर्शनार्थियों की काफी भीड़ रहती है।

वेदांत सोसायटी द्वारा संचालित और निर्मित सांता बारबरा (कैलीफोर्निया) स्थित रामकृष्ण मंदिर भी अमरीकी, भारतीय और अन्य समुदाय के लोगों का आकर्षण-केन्द्र बना रहता है। यहां प्रति रविवार को सुबह कई सौ लोग स्वामी रामकृष्ण के वचनामृतों का रसास्वादन करते हैं। इसी तरह प्रकृति की गोद में ऊंचे पेड़-पौधों और फूलों के बीच पोर्टलैंड (ओरगन) वेदांत सोसायटी द्वारा संचालित रामकृष्ण मिशन आश्रम स्थित मंदिर एकांत प्रेमी और प्रकृति-प्रेमी धार्मिक गोरे भक्तों और सैलानियों को अब काफी आकर्षित कर रहा है।

पिट्सबर्ग (पेंसिल्वनियां) में भारतीयों द्वारा बनाया गया श्री वेंकटेश्वर मंदिर अमरीकियों को सबसे अधिक आकर्षित कर रहा है। यह मंदिर पिट्सबर्ग के बाहर एक पहाड़ी पर बना हुआ है। सन १९६० में यहां बसनेवाले

हिन्दुओं द्वारा बनाये गये एक 'स्टोर वेसमैंट' मंदिर से यह विकसित हुआ है। आठ लाख डॉलर से अधिक राशि के पत्थर और लकड़ी के बने इस मंदिर का निर्माण भारत से आये कारीगरों ने किया। इस मंदिर का चमकीला सफेद ढाँचा जिसका प्रवेश-द्वार ५० फुट का है तिरुपति (आंध्रप्रदेश) स्थित तिरुमलई के मंदिर से बहुत मिलता-जुलता है। इस मंदिर में हाथी-दांत के आकार के विशाल स्तंभ अमरीकन और कनाडियन लोगों के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बने हुए हैं। यहाँ एक सप्ताह में ३०० से लेकर १००० तक तीर्थ-यात्री आते हैं।

सन १९७८ की वसंत-ऋतु में फलार्शिग (न्यूयार्क) में बनाया गया छोटा वेंकटेश्वर हिन्दू मंदिर भी यहाँ गोरे भक्तों में काफी प्रसिद्ध हो रहा है। इस क्षेत्र में करीब २००० भारतीय रहते हैं, जिनमें ८० प्रतिशत हिन्दू हैं। इस मंदिर के निर्माण में अमरीका में बसे दक्षिण भारतीय लोगों तथा तिरुपति मंदिर व आंध्र सरकार ने सहायता की है। सन १९६२ में दक्षिण भारत से आये एक युगल दंपति श्री अलगप्पन अब अपने भक्तों के सहयोग से हरे कृष्ण भावना-संघ की भांति हस्टन, लॉस एंजिलस, सानफ्रांसिस्को और वैमिगर्सफाल्स (न्यूयार्क) में भी मंदिरों को स्थापित करने की तैयारी कर रहे हैं।

(कादम्बिनी : जून १९८० से साभार)

*

गतांक से आगे

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन-कथा

— चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

लाटू को वे जिस प्रकार शिक्षित करना चाहते थे उसका अब तब हमने अपनी भाषा में वर्णन किया। अब हम उसी विषय को लाटू महाराज की ही भाषा में आपके समक्ष रखेंगे। उनके काशी तथा बलराम मन्दिर में निवासकाल में उनके वार्तालाप के दौरान जो कुछ उनके मुख से निःसृत हुआ था, वही हम यहाँ पर एक भक्त की डायरी से उद्धृत करते हैं—

"अरे! ठाकुर हमें कितना सिखाया और समझाया करते थे। हमसे कहते,—जा न रे लोरेन[1] के पास। वहीं पर बैठे-बैठे हमने कितनी बातें सुनी हैं। गिरीश बाबू के साथ लोरेन का कैसा झगड़ा लगा देते थे! लेकिन लोरेन बड़ा तेज था। वह किसी की Care (परवाह) नहीं करता था। लोरेन सब कुछ बोलता था और हम सब कुछ सुनते थे। सुनने के बाद आकर सब उनको बतलाना पड़ता था। कभी-कभी वे हमारी परीक्षा लेते हुए कहते, 'लोरेन ने ऐसी बात कही, और तू चुप मारे बैठा।' मैं तब क्या जानता था? मैं लोरेन के सामने भला क्या बोल पाता? ठाकुर कहते, 'यहाँ की (मेरी) इतनी बातें सुनकर भी तू कुछ नहीं बोला? तुझे कहना था कि उनके (ईश्वर) न करने पर भला यह सब किसने किया?"

१. नरेन, परवर्ती काल के स्वामी विवेकानन्द

हिन्दुओं द्वारा बनाये गये एक 'स्टोर बेसमैंट' मंदिर से यह विकसित हुआ है। आठ लाख डॉलर से अधिक राशि के पत्थर और लकड़ी के बने इस मंदिर का निर्माण भारत से आये कारीगरों ने किया। इस मंदिर का चमकीला सफेद ढाँचा जिसका प्रवेश-द्वार ५० फुट का है तिरुपति (आंध्रप्रदेश) स्थित तिरुमलई के मंदिर से बहुत मिलता-जुलता है। इस मंदिर में हाथी-दांत के आकार के विशाल स्तंभ अमरीकन और कनाडियन लोगों के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बने हुए हैं। यहाँ एक सप्ताह में ३०० से लेकर १००० तक तीर्थ-यात्री आते हैं।

सन १९७८ की वसंत-ऋतु में फलाशिंग (न्यूयार्क) में बनाया गया छोटा वेंकटेश्वर हिन्दू मंदिर भी यहाँ गोरे भक्तों में काफी प्रसिद्ध हो रहा है। इस क्षेत्र में करीब २००० भारतीय रहते हैं, जिनमें ८० प्रतिशत हिन्दू हैं। इस मंदिर के निर्माण में अमरीका में बसे दक्षिण भारतीय लोगों तथा तिरुपति मंदिर व आंध्र सरकार ने सहायता की है। सन १९६२ में दक्षिण भारत से आये एक युगल दंपति श्री अलगप्पन अब अपने भक्तों के सहयोग से हरे कृष्ण भावना-संघ की भांति हस्टन, लॉस एंजिलस, सानफ्रांसिस्को और वैमिगर्सफाल्स (न्यूयार्क) में भी मंदिरों को स्थापित करने की तैयारी कर रहे हैं।

(कादम्बिनी : जून १९८० से साभार)

*

गतांक से आगे

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन-कथा

— चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

लाटू को वे जिस प्रकार शिक्षित करना चाहते थे उसका अब तब हमने अपनी भाषा में वर्णन किया। अब हम उसी विषय को लाटू महाराज की ही भाषा में आपके समक्ष रखेंगे। उनके काशी तथा बलराम मन्दिर में निवासकाल में उनके वार्तालाप के दौरान जो कुछ उनके मुख से निःसृत हुआ था, वही हम यहाँ पर एक भक्त की डायरी से उद्धृत करते हैं—

"अरे! ठाकुर हमें कितना सिखाया और समझाया करते थे। हमसे कहते,—जा न रे लोरेन[1] के पास। वहीं पर बैठे-बैठे हमने कितनी बातें सुनी हैं। गिरीश बाबू के साथ लोरेन का कैसा झगड़ा लगा देते थे! लेकिन लोरेन बड़ा तेज था। वह किसी की Care (परवाह) नहीं करता था। लोरेन सब कुछ बोलता था और हम सब कुछ सुनते थे। सुनने के बाद आकर सब उनको बतलाना पड़ता था। कभी-कभी वे हमारी परीक्षा लेते हुए कहते, 'लोरेन ने ऐसी बात कही, और तू चुप मारे बैठा।' मैं तब क्या जानता था? मैं लोरेन के सामने भला क्या बोल पाता? ठाकुर कहते, 'यहाँ की (मेरी) इतनी बातें सुनकर भी तू कुछ नहीं बोला? तुझे कहना था कि उनके (ईश्वर) न करने पर भला यह सब किसने किया?"

१. नरेन, परवर्ती काल के स्वामी विवेकानन्द

—"क्यों ? लोरेन कहता है 'अपने आप हुआ है।"

ठाकुर—क्या यह सब अपने आप हो सकता है ? कार्य के पीछे कारण रहता ही है। शक्ति रहने से उसके पीछे शक्तिमान का आधार अवश्य रहता है।

"इसी प्रकार ठाकुर हमें सबकुछ सिखाया करते थे। और भी कितना कुछ सिखाते थे !"

एक भक्त—क्या सिखाते थे, महाराज ?

लाटू महाराज—अरे ! नशा करना सिखाते थे। और क्या !

यह सुनकर भक्त अवाक् रह गये। भक्त को विस्मित देखकर लाटू महाराज विनोदपूर्वक बोले—"अरे ऐसा वैसा नहीं, बिल्कुल राजा नशा करना सिखाते थे। संसारी लोग अपने बच्चों को कामिनी कांचन का नशा करना सिखाते हैं, मद्य एवं जूआ का नशा करना सिखाते हैं तथा मान-इज्जत का नशा करना सिखाते हैं। परन्तु वे सिखाते थे—ब्रह्मनशा। यह नशा बड़ा तगडा है। इस नशे के सामने बाकी नशे फीके पड़ जाते हैं।"

ये बातें सुनकर भक्त का विस्मय दूर हुआ और उन्होंने फिर पूछा —"यह नशा करना वे आपको किस-प्रकार सिखाते थे ? क्या वे भगवान को अफीम की गोली के समान बनाकर आपलोगों को खिलाते थे ?" लाटू महाराज—"यह कैसी बात कहते हो जी !... भगवान का नशा करने के लिए कुछ खाने या पीने की जरूरत नहीं पड़ती—जिसे भगवान की प्राप्ति हुई है उनके दर्शन-स्पर्शन से ही नशा चढ़ जाता है। उनका संग करने से ही मन ब्रह्मनशे में चूर हो जाता है।"

एक भक्त—महाराज ! वही ब्रह्मनशा हमारे भीतर भी जगा दीजिए न ! ऐसी कुछ व्यवस्था कर दीजिए कि हम इस संसार की माया से मुक्त हो जायँ।

लाटू महाराज—हाँ ! व्यवस्था तो है। लेकिन जानते हो न—मनुष्य पहले भंग का नशा करता है, फिर भंग छोड़कर गाँजा पकड़ता है, गाँजा छोड़कर फिर चरस का सेवन करता है, चरस छोड़ने के बाद मदिरा पीता है और अन्त में अफीम लेने लगता है। अफीम का नशा पकड़ने के बाद क्या भंग अच्छा लगता है ? तुम्हारा भी ऐसा ही है। पहले तुम्हें संसार का नशा लगा है— नाम, यश, कामिनी, कांचन इनके नशे से ऊपर उठो, तभी तो अफीम की इच्छा होगी। इन नशों के बाद ही ब्रह्मनशा चढ़ता हैं। उसमें डूब जाने पर भंग, गाँजा, चरस, मदिरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वही नशा करना हो तो आओ। यहाँ बैठो—थोड़ा-थोड़ा खाओ और हरवखत उनका नाम लेते रहो। नाम के नशे में मतवाले हो जाओ। परन्तु चालाकी से काम न होगा। वे कहा करते थे—'मन में अंकट-बंकट रहने से काम नहीं चलेगा।'

—महाराज ! मन का अंकट-बंकट क्या होता है ?

लाटू महाराज—नहीं जानते ? अरे ! वही तो माया है। तुमलोग संसार के नशे में डूबे रहोगे और संसार की निन्दा भी करोगे। संसार को छोड़कर आना भी न चाहोगे और संसार में रहकर लड़ भी नहीं सकोगे। इसी को वे अंकट-बंकट कहते थे।

× × ×

एक दूसरे दिन की डायरी से—

"जानते हो ! ठाकुर ने मुझे खींच लिया था। मैं एक अनाथ था, अपरिचित था— मुझ पर उन्होंने अपना स्नेह ढाल दिया था। उनकी कृपा न होने पर मुझे नौकरी करते-करते बकरी बन जाना पड़ता, मेरा सारा जीवन बरवाद हो जाता। मुझे वे ही तो यह सब सिखाया करते थे, मैं मूर्ख हूँ, यह सब क्या जानूँ ! मुझे कहते, 'देख, दिल को साफ रखना और उस पर गर्द न जमने देना।"

एक भक्त—गर्द क्या चीज है, महाराज ?

लाटू महाराज (हँसते हुए)—अरे, जानते नहीं ? कितनी धूल-मिट्टी पड़ी है।

भक्त को विस्मयविमूढ़ देखकर लाटू महाराज पुनः बोले—"अरे ! 'गर्द' नहीं जानते। अहंकार को वे गर्द कहा करते थे। देखते नहीं कि अहंकारी व्यक्ति कैसा

एक भक्त—संसार में रहने पर रुपया-पैसा तो लगता ही है। आप तो जानते ही हैं कि रुपये-पैसे के बिना गृहस्थी नहीं चलती।

लाटू महाराज—हाँ ! जानता तो हूँ। परन्तु जैसा चाहोगे वैसा ही तो मिलेगा। वे कहा कहते थे—"उनसे जो कुछ माँगोगे, सब मिलेगा। लेकिन उन्हें चाहने पर सभी चाहों का अन्त हो जायगा।"

एक भक्त—हमलोग तो उन्हें पुकार नहीं पाते महाराज ! हमारे जैसे अभागों की पुकार क्या उनके कान तक पहुँचती है ?

लाटू महाराज—अवश्य पहुँचती है। तुमलोगों की पुकार में है रुपया, रुपया, रुपया। इसीलिए तो वे तुमलोगों को रुपये भेज रहे हैं; और जिस दिन इस पुकार के भीतर होगा 'मैं रुपये, मान, यश आदि कुछ भी नहीं चाहता केवल उन्हीं को चाहता हूँ—उसी दिन वे आयेंगे। वे कहते थे, 'भोग रहने से ही योग कम हो जाता है और भोग रहने से तकलीफ बढ़ती है।' वे दिनरात हमें यही बात सिखाते थे, कहते थे, 'याग-योग में जगे रहना, सोते समय उन्हें पुकारना, काम के बीच उन्हें पकड़ना और सदा उनकी सेवा में लगे रहना।"

× × ×

लाटू की शिक्षा का मूलमन्त्र इन चार वाक्यों में सन्निहित है—"याग-योग में जगे रहना।" अर्थात् मन को सर्वदा उन्हीं में लगाये रखना। "सोते समय उनको पुकारना।"—इसके दो अर्थ हो सकते हैं; पहला, रात को निर्जन में उन्हें पुकारना और दूसरा अर्थ हो सकता है, मन में तामसिक भाव का उदय होने पर उन्हें पुकारना। तीसरा वाक्य है—"काम के बीच में उन्हें पकड़ना।"—इसका अर्थ स्पष्ट है कि किसी कार्य में अपने अहंकार को सिर न उठाने देना। और "सदा उनकी सेवा में लगे रहना"—अर्थात् आलस्य में वृथा समय न गँवाना, सर्वदा उनके कार्य में व्यस्त रहना। पता नहीं ठाकुर उन्हें गीता में कथित प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा के पथ से शिक्षित करना चाहते थे अथवा नहीं। तथापि इन सब वार्त्तालापों से जितना कुछ व्यक्त हुआ है उसके आधार पर हम निःसन्दिग्ध भाव से कह सकते हैं कि ठाकुर की शिक्षाप्रणाली में दिव्यस्पर्श की झलक है, दिव्य उन्माद का संकेत है और सत्य एवं पवित्रता के पथ पर चलकर हृदय को उन्मुक्त करने के गोपनीय उपाय है। इसमें विचार और बुद्धि की मनन क्रिया की अपेक्षा आन्तरिक अनुभूति के जागरण का ही आधिक्य है। अनुभूतिमूलक शिक्षा की प्राथमिक बात—वस्तु का विचार नहीं, वरन् वस्तु की सेवा है। अगले अध्याय में हम इसी को बतलाने का प्रयास करेंगे।

कोई भी कर्त्तव्य तुच्छ नहीं है। क्या काम करता है इससे नहीं बल्कि किस भाव से करता है, इससे आदमी की पहचान होनी चाहिए। एक मोची जो सुन्दर मजबूत जूते स्वल्पकाल में तैयार कर सकता है, वह अच्छा है बनिस्बत एक प्राध्यापक के जो दिन भर फजूल बकता रहता है। सब कर्त्तव्य पवित्र हैं और कर्तव्य-निष्ठा प्रभु-पूजन का एक उत्तम प्रकार है।

—स्वामी विवेकानन्द

एक भक्त—संसार में रहने पर रुपया-पैसा तो लगता ही है। आप तो जानते ही हैं कि रुपये-पैसे के बिना गृहस्थी नहीं चलती।

लाटू महाराज—हाँ! जानता तो हूँ। परन्तु जैसा चाहोगे वैसा ही तो मिलेगा। वे कहा कहते थे—"उनसे जो कुछ माँगोगे, सब मिलेगा। लेकिन उन्हें चाहने पर सभी चाहों का अन्त हो जायगा।"

एक भक्त—हमलोग तो उन्हें पुकार नहीं पाते महाराज! हमारे जैसे अभागों की पुकार क्या उनके कान तक पहुँचती है?

लाटू महाराज—अवश्य पहुँचती है। तुमलोगों की पुकार में है रुपया, रुपया, रुपया। इसीलिए तो वे तुमलोगों को रुपये भेज रहे हैं; और जिस दिन इस पुकार के भीतर होगा 'मैं रुपये, मान, यश आदि कुछ भी नहीं चाहता केवल उन्हीं को चाहता हूँ—उसी दिन वे आयेंगे। वे कहते थे, 'भोग रहने से ही योग कम हो जाता है और भोग रहने से तकलीफ बढ़ती है।' वे दिनरात हमें यही बात सिखाते थे, कहते थे, 'याग-योग में जगे रहना, सोते समय उन्हें पुकारना, काम के बीच उन्हें पकड़ना और सदा उनकी सेवा में लगे रहना।"

× × ×

लाटू की शिक्षा का मूलमन्त्र इन चार वाक्यों में सन्निहित है—"याग-योग में जगे रहना।" अर्थात् मन को सर्वदा उन्हीं में लगाये रखना। "सोते समय उनको पुकारना।"—इसके दो अर्थ हो सकते हैं; पहला, रात को निर्जन में उन्हें पुकारना और दूसरा अर्थ हो सकता है, मन में तामसिक भाव का उदय होने पर उन्हें पुकारना। तीसरा वाक्य है—"काम के बीच में उन्हें पकड़ना।"—इसका अर्थ स्पष्ट है कि किसी कार्य में अपने अहंकार को सिर न उठाने देना। और "सदा उनकी सेवा में लगे रहना"—अर्थात् आलस्य में वृथा समय न गँवाना, सर्वदा उनके कार्य में व्यस्त रहना। पता नहीं ठाकुर उन्हें गीता में कथित प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा के पथ से शिक्षित करना चाहते थे अथवा नहीं। तथापि इन सब वार्त्तालापों से जितना कुछ व्यक्त हुआ है उसके आधार पर हम निःसन्दिग्ध भाव से कह सकते हैं कि ठाकुर की शिक्षाप्रणाली में दिव्यस्पर्श की झलक है, दिव्य उन्माद का संकेत है और सत्य एवं पवित्रता के पथ पर चलकर हृदय को उन्मुक्त करने के गोपनीय उपाय है। इसमें विचार और बुद्धि की मनन क्रिया की अपेक्षा आन्तरिक अनुभूति के जागरण का ही आधिक्य है। अनुभूतिमूलक शिक्षा की प्राथमिक बात—वस्तु का विचार नहीं, वरन् वस्तु की सेवा है। अगले अध्याय में हम इसी को बतलाने का प्रयास करेंगे।

●

कोई भी कर्त्तव्य तुच्छ नहीं है। क्या काम करता है इससे नहीं बल्कि किस भाव से करता है, इससे आदमी की पहचान होनी चाहिए। एक मोची जो सुन्दर मजबूत जूते स्वल्पकाल में तैयार कर सकता है, वह अच्छा है बनिस्बत एक प्राध्यापक के जो दिन भर फजूल बकता रहता है। सब कर्तव्य पवित्र हैं और कर्तव्य-निष्ठा प्रभु-पूजन का एक उत्तम प्रकार है।

—स्वामी विवेकानन्द

सुनहरा नेवला

—स्वामी विवेकानन्द

कुरुक्षेत्र के युद्ध के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ के समय उन्होंने ब्राह्मणों और गरीबों में असीम धन-राशि का वितरण किया। राजा का दान देखकर चारों ओर धन्य-धन्य होने लगा। सब यही कहने लगे कि ऐसा यज्ञ न किसी ने पहले किया है और न किसी ने कभी देखा है।

यज्ञ समाप्त होने ही वाला था कि अचानक एक नन्हा-सा नेवला एक ओर से भाग आया और यज्ञ की भूमि पर लोट लोट कर अपने शरीर को रगड़ने लगा। नेवले का आधा शरीर सोने का था। इस अद्‌भुत नेवले के ऐसे व्यवहार को देख सभी आश्चर्य करने लगे। जब नेवला मनुष्य की आवाज में बोलने लगा तब तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। सब लोग अपना-अपना स्थान छोड़ नेवले के समीप आ गये। नेवला कहने लगा, "तुम सब झूठे हो। युधिष्ठिर का यह यज्ञ असली यज्ञ नहीं है। यदि यह यज्ञ असली यज्ञ होता तो मेरा बचा हुआ आधा शरीर भी सोने का हो जाता।"

सभा में से एक ने पूछा, "ऐ नेवले, तुम यह क्या कह रहे हो? क्या तुम नहीं जानते कि इस यज्ञ में महाराज ने असंख्य धन-राशि का वितरण किया है? और तुम यज्ञ की निन्दा कर रहे हो। तुम्हें शायद ज्ञान नहीं है कि यह यज्ञ शास्त्रों और महापुरुषों के उपदेश के अनुसार सम्पूर्ण हुआ है। कहीं भी कोई भूल नहीं हुई है।"

नेवला मनुष्य के समान हँसकर कहने लगा, "मुझे यह सब जानने की आवश्यकता नहीं। अब भी मैं कहता हूँ कि यह सच्चा यज्ञ नहीं है।"

"तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है?"

"प्रमाण मेरा शरीर है। मैं स्वयं प्रमाण हूँ।"

सब चकित हो नेवले की बात सुनने लगे। नेवला कहने लगा, "एक असली यज्ञ मैंने पहले देखा है। उसी के बारे में मैं आज आपसे कहूँगा। कुरुक्षेत्र में एक धर्म-निष्ठ ब्राह्मण रहता था। धन-उपार्जन करने की सामर्थ्य न होने के कारण वह भिक्षा पर ही अपना निर्वाह करता था। उसके परिवार में स्त्री, पुत्र और पुत्र-वधू थे। भिक्षा से मिले अन्न से अतिथि सत्कार करने के पश्चात् जो बच जाता उस से ही वह अपने परिवार का निर्वाह करता। इस प्रकार उनके दिन आनन्द से कट रहे थे।

"कुछ समय बाद उस देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। ब्राह्मण रोज भिक्षा के लिए निकलता, पर खाली हाथों लौट आता। घर में उपवास शुरू हो गया। कई दिन उपवास में कटे। पर एक दिन ब्राह्मण को भिक्षा में कुछ जौ के दाने मिले। ब्राह्मण के परिवार के आनन्द की सीमा न रही और जल्दी-जल्दी उन्होंने सत्तू तैयार किया।

"सत्तू चार भागों में बांटा गया। खाने के लिए बैठने ही जा रहे थे कि द्वार पर एक अतिथि आ पहुँचा। अतिथि भूख से व्याकुल था। ब्राह्मण उसे आदर सहित भीतर ले आया। अतिथि कहने लगा, 'भूख से मेरे प्राण निकल रहे हैं। शीघ्र मुझे कुछ खाने को दो।'

"ब्राह्मण शीघ्रता से सत्तू का अपना भाग ले आया और अतिथि को दे दिया। अतिथि क्षुधा से इतना व्याकुल था कि कुछ क्षणों में सब खा गया और कहने लगा, 'इससे तो मेरा कुछ बना नहीं। कुछ तो और लाओ।"

"ब्राह्मण सोच में पड़ गया। अब और क्या देकर अतिथि को तृप्त करे। ब्राह्मण की पत्नी अपने पति की चिन्ता को जान गयी और ब्राह्मण को भीतर बुला कर कहने लगी, 'क्या-चिन्ता है? मेरा सत्तू का भाग तुम

अतिथि को दे दो। अतिथि तो देवता समान है। उसकी सेवा ही परम कर्त्तव्य है।'

"ब्राह्मण बोला, 'उपवास करते-करते तुम्हारा शरीर बहुत निर्बल हो गया है, किस तरह मैं तुम्हारा भाग किसी को दे सकता हूँ?'

"पत्नी आग्रह से बोली, 'नहीं-नहीं, अतिथि बैठा हुआ है। शीघ्रता से मेरा भाग उसे दे आओ। तुम्हारा और मेरा एक ही धर्म है। तुम्हारे कर्त्तव्य में त्रुटि रहने पर मेरा कर्त्तव्य भी त्रुटिपूर्ण होगा। तुम्हारी कोई बात मैं नहीं सुनूँगी। जाओ मेरा भाग अतिथि को दे दो।'

"कोई अन्य उपाय न देखकर ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। अतिथि ने वह सत्तू भी शीघ्र ही खा डाला, पर फिर भी उसकी भूख न मिटी।

"यह देखकर ब्राह्मण फिर सोच में पड़ गया। उसकी ऐसी अवस्था देख पुत्र कहने लगा, 'पिताजी आप चिन्ता क्यों करते हैं, मेरा भाग भी तो रखा है, आप उसे अतिथि को दे देवें।'

"ब्राह्मण बोलने में असमर्थ होने पर भी कहने लगा, तू तो अभी बालक ही है, तेरा शरीर उपवास नहीं सहन कर सकता। हम तो बूढ़े हैं, हमें उपवास सहने में कुछ विशेष कष्ट नहीं होता, मैं किस तरह से तेरे मुख का ग्रास छीनकर दूसरे के हाथ में दे दूं?'

"पुत्र ने उत्तर दिया, 'आप यह क्या कहते हैं पिता जी! अतिथि तो नारायण है। उसकी सेवा करना तो धर्म है। मेरे कष्ट को सोचकर आप इतने भयभीत हो रहे हैं? मुझे कुछ नहीं होगा। आप मेरा भाग अतिथि को दे दें।' ब्राह्मण को बहुत दुःख हुआ; क्योंकि वह पुत्र का भाग किसी तरह भी नहीं लेना चाहता था। किन्तु अतिथि की असन्तुष्टि देखकर विवश था। सो लड़के का भाग अतिथि को दे दिया फिर भी वह तृप्त न हो सका।'

"अब तो बेचारा ब्राह्मण घोर चिन्ता में पड़ गया। ससुर की चिन्ता देखकर बहू अपना सत्तू का भाग ले आयी और कहने लगी, 'पिताजी, चिन्ता की क्या बात है? मेरा भाग ले लीजिए और अतिथि की सेवा कीजिए।'

"बहू की बात सुनकर ब्राह्मण अधीर हो रोने लगा और बोला, 'बेटी, मेरा बूढ़ा शरीर कष्ट सह सकता है, पर तेरा कोमल शरीर कष्ट कैसे सहेगा? तुम्हारा कुम्हलाया मुख मुझसे देखा नहीं जाता। न खाते-खाते तुम्हारे शरीर की क्या दशा हो गयी है।'

'ससुर को सांत्वना देते हुए बहू बोली—'पिता जी, आप दुःखी न हों। आप मेरे गुरुओं के गुरु और देवताओं के देवता हैं। आपकी छोटी सी सेवा करने से भी मुझे जो आनन्द मिलता है उसे आप जानते ही हैं। अतिथि बैठा है। अब आप और देरी न करें और यह सत्तू ले जाकर उसे दे दें।'

"बहू ने हठपूर्वक सत्तू ससुर के हाथ में रख दिया। कांपते हाथों से ब्राह्मण ने वह अतिथि को दिया। कोमल बालिका के मुख से भोजन छीनकर अतिथि को देते हुए ब्राह्मण का हृदय बड़ा द्रवित हो उठा, पर अतिथि की सेवा तो करनी ही थी। अब और चारा ही क्या था!

"अब जाकर कहीं अतिथि की राक्षसी क्षुधा शान्त हुई। अत्यन्त प्रसन्न हो ब्राह्मण को आशीर्वाद देते-देते वह चला गया।

"मनुष्य का सारा जीवन एक परीक्षा है। भगवान नाना प्रकार से परीक्षा लेते हैं। वह ही अतिथि का रूप धर इस गरीब ब्राह्मण की परीक्षा लेने आये थे। इस प्रकार की कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना सबके बस की बात नहीं है। ब्राह्मण परिवार की दशा उपवास करते-करते बहुत क्षीण हो चुकी थी। बचने की कोई आशा न थी। उसी रात को चारों ने प्राण त्याग दिये।

नेवला कहता गया, "मैं उसी ब्राह्मण के घर में रहता था। शुरू से अन्त तक मैंने इस घटना को देखा—जहाँ बैठकर अतिथि ने भोजन किया था उस स्थान पर कुछ सत्तू धरती पर बिखर गया था। मेरे मन में न जाने क्या विचार आया कि मैं जाकर उस धरती पर लोटने लगा। उसी से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। बाकी के शरीर को सोने का करने के लिए मैंने सारी धरती का चक्कर लगा डाला है। जहाँ भी सुनता हूँ कि कोई यज्ञ होने वाला है वहीं जाकर यज्ञ की धरती पर लोटता हूँ, किन्तु आज तक कुछ परिणाम नहीं हुआ। आज यहाँ आकर भी मैंने यत्न किया पर शरीर में कुछ भी अन्तर नहीं आया।

"इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह सच्चा यज्ञ नहीं है। भिखारी ब्राह्मण ने अतिथि की सेवा के लिए जो यज्ञ किया था, तुम्ही बताओ, क्या उसके साथ युधिष्ठिर के इस यज्ञ की तुलना हो सकती है?"

("विवेकानन्द की कथा-कहानियाँ" से) ●

आनंद

–प्रस्तुति : सुश्री मंजु गौतम

"गुरुदेव मुझे अपना शिष्यत्व प्रदान करें"—नवागन्तुक ने कहा। "वत्स, तुम मेरे यहाँ आये, यही तुम्हारी कृपा है। जिस व्यक्ति ने मुझे योग्य समझा और तुम्हें मेरे पास भेजा उसका भी मुझ पर अनुग्रह है। पर, सच पूछो तो मैं कुछ भी सिखाने मे असमर्थ हूँ। मैं तो स्वयं निरन्तर सीखता रहता हूँ। वत्स, वास्तव में कोई किसी को कुछ सिखाता नहीं, पढ़ाता नहीं। मनुष्य में पहले से ही ज्ञान है जिसका उन्मेष होना ही सीखना है। जिनको गुरु कहा जाता है, वे तो इस उन्मेष के माध्यम भर होते हैं। फिर, माध्यम कुछ भी हो सकता है, कोई भी वस्तु ··" वात्सल्य भाव से गुरु ने कहा।

"पर, महाराज ! मैं तो आपको अपना गुरु मान चुका हूँ"—कातर कण्ठ से आगन्तुक बोला।

"जैसी तुम्हारी इच्छा। यहाँ रहो। अध्ययन-चिन्तन की सारी सुविधाएँ मैं दूँगा। सब कुछ है यहाँ। देखो। सुनो। समझो। जितना संभव हो, आनंद प्राप्त करो। कभी कभार मुझसे मिल लिया करो।"

एक दिन शिष्य गुरु के पास पहुँचा। गुरु ने पूछा—'क्या देखा ? क्या सुना ? क्या समझा' ? "गुरुदेव, पक्षियों को देखा। उनका संगीत सुना। शुभ्र नीलाकाश में सप्तवर्णी पर फलाये मस्ती से उड़ते देख सोचा— मैं भी यदि ऐसा ही हो पाता ··? –शिष्य बोला। "ठीक है, जाओ। और भी देखो। सुनो। समझो।"

X X X

"क्या देखा" ?

"गुरुवर; पक्षियों को निर्द्वन्द्व—निर्भय विहार करते देखा। सोचा, ऐसे ही सबसे मिलजुलकर, प्रसन्नतापूर्वक सब रहते, मैं भी रहता···।" ठीक है—"जाओ। देखो। बहुत कुछ शेष है।"

X X X

"क्या देखा ?"

"गुरुवर—एक अद्वितीय सुन्दर पक्षी को देखा। शायद जीवन में फिर कभी नहीं देखूँ। सोचा, इसे पिंजड़े में बंदकर रखता।"

"ठीक है। और भी देखो। सारा विश्व सुन्दर है।

X X X

"क्या देखा ?"

"गुरुवर, बहुत-से पक्षियों को देखा। एक-से-एक सुन्दर, सरल, स्नेह युक्त। फिर सोचा। सुन्दर है तो मुझे इससे क्या ? रूप उसका है। प्राण उसके हैं। स्वर उसके हैं ! फिर मैं चला आया।" "तब तुमने देख लिया। इतना ही ज्ञान है। इससे अधिक कुछ भी सिखाने में मैं असमर्थ हूँ। यह भी सिर्फ मेरे पास ही नहीं है अपितु सर्वत्र बिखरा हुआ है। मैंने कहा था न—निमित्त कुछ भी हो सकता है। दुनिया को, दुनिया के अखिल सौन्दर्य को अनासक्त भाव से देखो। यही आनंद है। यही सत्य है। यही ज्ञान है। जाओ वत्स, जितना सको, आनंद ग्रहण करो।"—गुरु ने कहा और उनकी दृष्टि नीले आकाश की तरफ उठ गयी..... ...अपलक..... निर्निमेष..... ।

A man must work. Only then can he see God. One can not develop love of God or obtain His vision without work. Work means meditation, japa and the like. Chanting of God's name and glories is work too. You may also include charity, sacrifice, and so on.

—**Sri Sri Ramakrishna**

With Best Compliments From :

SHREE MAA KALI SAW MILL

Bhagalpur Road
DUMKA—814101 (S.P.)
BIHAR

Phone : 171
SSI Regd No.
03 I 14 I 02086 I PMT I SSI

SAWING CONTRACTOR, TIMBER MERCHANT
&
GENERAL ORDER SUPPLIER

+++

Stand up, be bold, be strong. Take the whole responsibility on your own shoulders, and know that you are the creator of your own destiny. All the strength and succour you want is within yourselves. Therefore make your own future.

—**Swami Vivekananda**

With Best Compliments From :

Phone : 188

Poddar Trading Corporation

Authorised dealer for :
KIRLOSKAR ENGINES, MOTOR, STARTER
&
ENGINE SPARES
Marwari Chowk, DUMKA-814101
(BIHAR)